त्साहित्य प्रकाशन

बालकों का पालन-पोषण

—शिशु-पालन संबंधी सचित्र वैज्ञानिक जानकारी—

०

लेखक

डाक्टर एस० टी० आचार

●

अनुवादक

माधव उपाध्याय

●

१९६१

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक :

मार्तण्ड उपाध्याय,

मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,

नई दिल्ली

पहली बार : १९६१

मूल्य

अढ़ाई रुपये

मुद्रक :

कंवल लखेरवाल,

लखेरवाल प्रेस,

नई दिल्ली-५

प्रकाशकीय

बच्चों के पैदा होने से लेकर बड़े होने तक हमारे देश में उनका पालन-पोषण होता तो है, लेकिन बहुत-कुछ पुराने ढंग पर। आज जबकि शिक्षा, स्वास्थ्य, रहन-सहन, विज्ञान आदि के क्षेत्र में बहुत उन्नति हो गई है और बच्चों के पालन-पोषण के संबंध में नई वैज्ञानिक पद्धतियां विकसित हो चुकी हैं, पुरानी परंपराओं और रूढ़ियों में परिवर्तन की बड़ी आवश्यकता है। लेकिन खेद की बात है कि हमारे देश में नई प्रणालियों से अधिकांश लोग परिचित नहीं हैं।

यह पुस्तक इसी कमी को दूर करने के लिए निकाली जा रही है। इसमें बताया गया है कि नवजात शिशु की किस प्रकार देखभाल होनी चाहिए, उसे किस प्रकार दूध पिलाना चाहिए, बड़े होने पर उसे किस प्रकार का भोजन देना चाहिए, रोगों से उसे किस तरह बचाना चाहिए, आदि-आदि। पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें जो कुछ जानकारी दी गई है, वह वैज्ञानिक है। वस्तुतः इसके लेखक स्वयं एक सुख्यात बाल-रोग-विशेषज्ञ हैं और उन्होंने बड़े ही परिश्रम और विवेक से इस पुस्तक की सामग्री तैयार की है।

बिना चित्रों के ऐसी पुस्तक अधूरी रहती। इसलिए विषय को अच्छी तरह समझाने के लिए इसमें बहुत-से चित्र दे दिये गये हैं।

बच्चों के ऊपर हमारे देश का भविष्य निर्भर करता है। उनका सही पालन-पोषण और विकास न केवल परिवार की दृष्टि से आवश्यक है, अपितु राष्ट्र के कल्याण की दृष्टि से भी। हम लेखक के आभारी हैं कि उन्होंने इतने महत्वपूर्ण विषय पर इतनी उपयोगी सामग्री प्रस्तुत की है।

हमें विश्वास है कि यह पुस्तक भारतीय माताओं के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी और वे इसका पूरा लाभ उठायेंगी।

पुस्तक के अनुवाद, संपादन तथा तैयारी में श्री नरेश वेदी ने विशेष सहायता दी है, तदर्थ हम उन्हें धन्यवाद देते हैं।

—मंत्री

विषय-सूची

भूमिका

डाक्टर आचार हमारे सबसे प्रमुख शिशु-रोग चिकित्सकों में हैं। मेरी उनसे मुलाकात कुछ बरस पहले 'भारतीय शिशु कल्याण परिषद' के काम के सिलसिले में हुई थी। उनकी शिशु-स्वास्थ्य की योजनाओं में मेरी बड़ी दिलचस्पी रही है।

बालकों की उचित देखभाल के जरिये ही हम एक स्वस्थ राष्ट्र की नींव डाल सकते हैं। हर मां तंदुरुस्त बच्चे चाहती है, लेकिन उसे बच्चों की देखभाल की आवश्यक जानकारी आमतौर पर नहीं होती, और न इन मामलों में विशेषज्ञों के मार्गदर्शन या सलाह की समुचित सुविधाएं ही हैं।

डाक्टर आचार स्वयं मद्रास में मातृ तथा बाल-स्वास्थ्य केंद्रों में मूल्यवान कार्य कर रहे हैं। इससे वह सभी वर्गों की माताओं की दिन-प्रति-दिन की समस्याओं से लगातार परिचित होते रहते हैं। इस विषय पर कुछ साहित्य विदेशों से आता है, लेकिन वह पश्चिमी देशों की परिस्थितियों के अनुसार होता है और अपने देश की औसत स्त्रियों के लिए ज्यादा उपयोगी नहीं होता, क्योंकि हमारे देश की और इन उन्नत देशों की स्त्रियों के रहने की हालतों और स्तरों में बड़ा अंतर है। इस दृष्टि से डाक्टर आचार की यह पुस्तक एक अभिनंदनीय प्रयास है और एक वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति करती है।

सभी प्रादेशिक भाषाओं में इसके अनुवाद का प्रस्ताव बहुत ही अच्छा है। इस प्रकार यह पुस्तक देश के सभी भागों में माताओं तथा शिशु-कल्याण में दिलचस्पी रखनेवाले लोगों के हाथ में पहुंच सकेगी और डाक्टर आचार के अनुभव तथा विशेष ज्ञान के लाभ को हर घर में ले जा सकेगी।

मेरी कामना है कि यह सामान्य, किंतु महत्वपूर्ण पहला कदम हमारे बच्चों के स्वास्थ्य को उन्नत करनेवाला सिद्ध हो।

—इंदिरा गांधी

प्रधान मंत्री भवन,

नई दिल्ली

प्रस्तावना

"जन्म से लेकर किशोरावस्था तक हर बालक के स्वास्थ्य की सुरक्षा का दायित्व समाज पर होना चाहिए। हर बालक के स्वास्थ्य तथा दांतों की समय-समय पर जांच होती रहनी चाहिए। छूत की बीमारियों को रोकने तथा उनसे बचाव करने के उपाय किये जाने चाहिएं। हर बच्चे को शुद्ध भोजन, शुद्ध दूध तथा शुद्ध जल प्राप्त होना चाहिए . . .

"हर बालक को रहने के लिए घर मिलना चाहिए और उसे वह प्यार और संरक्षण मिलना चाहिए, जो केवल अपना परिवार ही प्रदान कर सकता है। जिन बच्चों को दूसरों की देखरेख में भी पलना पड़े, उन्हें भी घर-जैसा ही वातावरण मिलना चाहिए।

"समाज ऐसा होना चाहिए कि वह हर बालक की आवश्यकताओं को समझे, उनकी व्यवस्था करे, बालक को शारीरिक खतरों, नैतिक संकटों तथा बीमारियों से बचाये, उसके लिए खेल-कूद तथा मनोरंजन के उचित साधन उपलब्ध करे और उसकी सांस्कृतिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे।

"ऐसे हर बालक को, जिसका समाज के साथ मेल नहीं बैठ पाता, उससे बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार पाने का अधिकार होना चाहिए। बालक में यह समझ पैदा होनी चाहिए कि वह समाज की रक्षा में है—उससे बहिष्कृत नहीं है। समाज का ऐसे बालक के प्रति इस प्रकार का व्यवहार रहना चाहिए कि जब भी संभव हो, बालक को जीवन की सामान्य धारा में वापस लाया जा सके।

"हर बालक को ये अधिकार जाति, वर्ण और स्थिति के भेदभाव के बिना मिलने चाहिएं।"

—'शिशु घोषणापत्र' से

बच्चे को यद्यपि सदा से ही समाज का एक महत्वपूर्ण सदस्य माना गया है, तथापि संगठित रूप से राष्ट्रव्यापी पैमाने पर शिशु-स्वास्थ्य की परिस्थितियों को सुधारने के व्यापक प्रयासों ने संसार भर में पिछले १०० वर्षों में ही

जोर पकड़ा है। स्वास्थ्य-विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ नजर उतारना और दागना आदि जैसे अंधविश्वासों का स्थान दूसरे वैज्ञानिक तरीकों ने ले लिया है। किंतु शिशु-स्वास्थ्य से संबंध रखनेवाले ये लंबे कदम इस शताब्दी में स्वास्थ्य-विज्ञान में व्यापक जन-रुचि के कारण ही संभव हुए हैं। खाद्य पदार्थों और संक्रामक रोगों से संबंधित लोक स्वास्थ्य के कानून, जल वितरण व मल-मूत्र-विसर्जन की उत्तमतर व्यवस्था के कारण शिशु-स्वास्थ्य का स्तर काफी ऊंचा उठा है और संसार के कई हिस्सों में रोकी जा सकनेवाली छूत की बीमारियां लगभग समाप्त हो गई हैं। भारत में तो अभी इसकी शुरूआत ही है, किंतु ऐसी आशा की जा सकती है कि अनवरत प्रयत्नों से तथा अन्य देशों के अनुभवों से लाभ उठाकर हम निकट भविष्य में शिशु-स्वास्थ्य का स्तर ऊंचा उठा सकेंगे।

यह पुस्तक भारत तथा उसके पड़ोसी देशों में शिशु-पालन में दिलचस्पी रखनेवाले लोगों और माता-पिताओं की सहायता के लिए लिखी गई है। प्रत्येक देश के माता-पिता और बड़े-बूढ़े बच्चे की सार-संभार पुरानी परंपराओं एवं रीति-रिवाजों के अनुसार करते हैं, फिर वे चाहे भोजन से संबंधित हों या दवा-दारू से; स्नान से संबंधित हों या शिशु की बौद्धिक एवं शारीरिक क्रिया से। सामान्य रोगों की चिकित्सा और तपेदिक, कोढ़, कुक्कुर खांसी, डिपथीरिया आदि छूत की बीमारियों की रोकथाम के तरीके भी परंपराओं से प्रभावित हैं—विशेषतया भारत और दूसरे पूर्वी देशों में। इनमें से कुछ तरीके तो उचित हैं और उन्हें काम में लाया भी जाना चाहिए; किंतु हमें यदि रोकी जा सकनेवाली छूत की बीमारियों को समाप्त या कम करना है और बच्चों को हृष्टपुष्ट बनाना है, तो इनमें से कई तरीकों को वैज्ञानिक शोधों के आधार पर बदलना होगा,

जैसाकि पिछले कुछ दशकों में अधिकतर पश्चिमी देशों ने किया है।

नवजात शिशु को समुचित रूप से स्तन-पान कैसे कराया जाये, किन-किन परिस्थितियों में और कब-कब मां के दूध की कमी को दूसरे खाद्य पदार्थों से पूरा किया जाये, भारत के विभिन्न भागों में शिशु-पोषण के कौन-कौनसे तरीके प्रचलित हैं और उनमें से किन-किनको बदलना आवश्यक है, इन सब बातों पर 'बच्चे का भोजन' नामक अध्याय में चर्चा की गई है।

यह एक सामान्य प्रश्न है कि क्या बच्चे की वृद्धि और उसका विकास समुचित रूप से हो रहा है। 'वृद्धि तथा विकास' नामक अध्याय का यही विषय है और उससे पालकों को यह समझने में आसानी होगी कि शिशु की क्रमिक वृद्धि और विकास का स्वाभाविक रूप क्या है और उसमें अंतर आ जाने का क्या कारण है।

सरदी, बुखार, जुकाम, खांसी, दस्त और चर्म रोग आदि बीमारियों के लिए एक अलग अध्याय है। इसमें माता-पिताओं को इन बीमारियों और उनकी रोकथाम संबंधी जानकारी मिल सकेगी। संक्रामक बीमारियोंवाले अध्याय में यह समझाया गया है कि कुत्ता खांसी के या डिप्थीरिया के लक्षण क्या हैं, अपने बच्चों को इनसे कैसे बचाया जाये और घर या महल्ले को इन बीमारियों की छूत से कैसे रोका जाये।

तपेदिक पर एक अलग अध्याय है, क्योंकि अभाग्यवश भारत में बच्चों में यह एक आम बीमारी है। इसके और कोढ़ के, जो भारत के कुछ भागों में काफी फैला हुआ है, प्रारंभिक लक्षण क्या हैं, बच्चे को इनकी छूत तो नहीं लगी, और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि बच्चे को इनकी छूत से कैसे बचाया जाये, ये सब इस अध्याय के विषय हैं।

आपका बच्चा ५ वर्ष का हो जाने पर भी विस्तर में

पेशाव कर देता है? वह चिड़चिड़ा तो नहीं हो जाता है? या वह वहुत ही शरमीला है ? भारत में घरों एवं सड़कों पर वच्चों के साथ होनेवाली दुर्घटनाओं को कैसे रोका जा सकता है तथा इसी प्रकार की अन्य समस्याओं पर अंत के अध्यायों में विचार किया गया है। आशा है कि इससे आपको अपने शिशु की आश्रित अवस्था से स्वतंत्र व्यक्तित्व तक होनेवाले क्रमिक विकास एवं उसकी परिवार तथा स्कूल संवंधी प्रति-क्रियाओं को समझने में सहायता मिलेगी। कहावत है कि शिशु की शिक्षा उसके जन्म लेने से २० वर्ष पूर्व, उसकी माता की शिक्षा के साथ, आरंभ हो जाती है। यह पुस्तक भारतीय माताओं के लिए इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिखी गई है।

—लेखक

बालकों का पालन-पोषण

: १ :

नवजात शिशु

एक मां ने मजाक में कहा था, "काश मेरा दूसरा बच्चा पहले होता !" इसलिए कि उसे अपने दूसरे बच्चे की देखभाल पहले की अपेक्षा ज्यादा सहल लगी थी।

किसी मां ने अगर नवजात शिशु पहले कभी न देखा हो, तो वह उसकी आकृति देखकर अचरज में पड़ जायेगी। तसवीरों को किताबों में छपे हंसते-खेलते, सलोने शिशु से वह बिलकुल भिन्न होता है। नवजात की त्वचा एक चिकने पदार्थ से ढंकी रहती है, जो गर्भ में उसकी रक्षा करता है। शुरू में चमड़ी कुछ लाल और चितकबरी-सी हो सकती है। कभी-कभी उसकी पीठ और बांहों पर बारीक रोएं भी हो सकते हैं, जो कुछ सप्ताहों में साफ हो जाते हैं। उसकी गर्दन के आसपास के भाग में कुछ लाली लिये हुए एक दाग-सा हो सकता है, जिसे बोलचाल की भाषा में लहसुन कहते हैं और जो दूसरे वर्ष के अंत तक लगभग मिट जाता है। कुछ बच्चों की पीठ पर नीले-नीले निशान भी हो सकते हैं, किंतु इनका कोई विशेष महत्व नहीं है। प्रसव के समय शिशु का सिर कुछ दबता और मुड़ता है, इसलिए कुछ दिनों तक वह बेडौल-सा भी लग सकता है या उस पर बड़ा-सा गुमड़ा हो सकता है; किंतु कुछ समय बाद यह सब अपने-आप ठीक हो जाता है। पूरे समय पर पैदा हुए बच्चों के वजन में भी अंतर होता है—किसीका वजन ९ या १० पौंड होता है,

तो किसीका ५॥ या ६ पौंड ही । इतना कम वजन शिशु की वृद्धि और विकास में किसी भी तरह से वाधक नहीं ह । वच्ची की अपेक्षा वच्चे का वजन कुछ अधिक होता है और पहला वच्चा वाद के वच्चों की अपेक्षा कुछ छोटा भी हो सकता है । पूरे समय से पहले पैदा होनेवाले वच्चे वजन में ५ पौंड से भी कम हो सकते हैं और वे कमजोर भी होते हैं । उनके लिए विशेष देखभाल व चिकित्सा की आवश्यकता होती है । पीलिया के कारण पूर्णतया स्वस्थ वच्चों के भी शरीर व आंखों में थोड़ा पीलापन हो सकता है । यह पैदा होने के तीसरे या चौथे दिन दिखाई पड़ता है और एक सप्ताह में विना किसी इलाज के ही ठीक हो जाता है । इससे वच्चे को कोई हानि नहीं होती । तथापि कुछ मामलों में पैदा होने के वाद पहले दिन से ही पीलिया का आक्रमण हो सकता है और यह गंभीर भी हो सकता है । इससे वच्चा एकदम पीला पड़ जाता है और सुस्त हो जाता है । ऐसे समय में आपको डाक्टर से समुचित सलाह लेनी चाहिए । हो सकता है कि नवजात अवस्था में कुछ वच्चों के स्तन सूजे हुए हों । कुछ दिनों में वे अपने-आप ठीक हो जाते हैं । इनको रगड़ने या इनकी मालिश करने की जरूरत नहीं । चांद का कोमल भाग भी, जिसका पता वहां हाथ फेरने से चल जाता है, वच्चे के डेढ़ वर्ष का होने तक आस-पास की हड्डियों से भर जाता है ।

पैदा होते ही नवजात शिशु जो कुछ हरकतें करने लगता है, वे उसको जीवित रखने में सहायक होती हैं, जैसे, खांसना, छींकना, रोना, चूसना आदि । इसके अलावा अन्य दूसरी वातों के लिए वह पूर्ण रूप से अपनी मां पर निर्भर रहता है । जन्म से लेकर किशोरावस्था तक के वीच की यह निर्भरता, जो शिशु के विकास के साथ-साथ कम होती जाती है, जानवरों से विलकुल भिन्न है । गाय की वछिया पैदा होने के फौरन वाद ही खड़ी होने लगती है और दो साल की उम्र

में वह मां बन सकती है। मानव शिशु की पैदा होने के बाद हिलने-डुलने और हाथ-पांव फेंकने की क्रियाएं क्रमहीन और लक्ष्यहीन होती हैं। यदि उसे छुआ या उठाया जाये, तो उसका पूरा शरीर हिलने लगता है। उसकी आंखों की गति उसके अपने वश में नहीं रहती। इस कारण, हो सकता है कि पैदा होने के कुछ सप्ताह बाद तक उसकी दोनों आंखें एक ही दिशा में न देख पायें। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वह भेंडा ही होगा। उसे तेज रोशनी का आभास जन्म के बाद से ही हो जाता दीखता है, और यद्यपि वह चीजों को अस्पष्ट रूप से देख सकता है और मुसकराता भी है, लेकिन मां को पहचान पाने में उसे लगभग आठ सप्ताह लग जाते हैं। ध्वनि के संबंध में भी यही बात है। जोर की या अचानक पैदा हुई आवाजों की तरफ तो उसका ध्यान जाता ही है, लेकिन जल्दी ही वह और आवाजों के प्रति भी सचेत होता जाता है। किंतु विभिन्न ध्वनियों को परखने में उसे हफ्तों लग जाते हैं। रोता हुआ शिशु पुचकारने से चुप हो जाता है। छूने, थपथपाने और गोद आदि में लेने से भी उसे अच्छा लगता है।

बच्चों के ताप में बड़ों की अपेक्षा जल्दी फेर-बदल होता है, क्योंकि उनके भार के अनुपात में उनकी त्वचा का क्षेत्र-फल अधिक होता है। इसलिए ऐसे स्थानों पर, जहां मौसम क्षण-क्षण बदलता रहता है, उनकी बड़ी सावधानी से देखभाल करनी चाहिए। उनकी पोशाक भी मौसम के अनुरूप ही होनी चाहिए। बहुत गरम मौसम में बच्चे के लिए एक पतला झबला तथा लंगोटी काफी हैं। बच्चों के पहनावे के लिए सूती कपड़े ही अधिक उपयुक्त रहते हैं। ऊनी कपड़े उन्हें चुभते हैं तथा आरामदेह नहीं रहते। अगर बच्चे को अधिक गरमी की आवश्यकता हो, तो उसे झबले के ऊपर ऊनी शाल ओढ़ाया जा सकता है।

नाभिनाल की देखभाल

बच्चे की नाभि में लगा हुआ नाल का टुकड़ा सूखकर तथा काला पड़कर लगभग सातवें दिन तक गिर जाता है, और पीछे एक छोटी सी साफ नरम सतह रह जाती है, जो कुछ ही समय में नाभि से मिल जाती है। इतने दिनों तक नाभिनाल के टुकड़े को स्वच्छ और सूखा रखना चाहिए। उसे हलके हाथों से स्पिरिट के फाहे से साफ करके उस पर विकीटाणुकृत (स्टेराइल) रूई रखकर उसे पट्टी से बांध सकते हैं।

नाभिनाल के टुकड़े के गिरने तक यदि बच्चे को स्नान न कराया जाये, तो अच्छा है। अन्यथा नहाने के पानी से नाभिनाल में छूत लग सकती है।

सफाई—पाखाना-पेशाब के बाद सफाई गीले कपड़े या रूई के टुकड़े से करने तक सीमित रखना चाहिए। शरीर की सिकुड़नों पर तिल या खोपरे का तेल अथवा लिक्विड पैराफिन लगाया जा सकता है। लेकिन तेल लगाने से पहले उसे विकीटाणुकृत करना आवश्यक है। इसके लिए तेल की बोतल को कोई १०-१५ मिनट तक उबलते हुए पानी में रखना चाहिए। तेल को विकीटाणुकृत न किया जाये, तो बच्चे के शरीर की चमड़ी को तेल में मौजूद कीटाणुओं से छूत लग सकती है। कई प्रसूतीगृहों में तो अब बच्चों को पैदा होने के बाद पहला स्नान तक कराना बंद किया जा रहा है। बस रूई के गीले टुकड़े से बच्चे का चेहरा तथा शरीर के अन्य खून में सने भाग साफ कर दिये जाते हैं। नाभिनाल पर रोज पट्टी बांधना भी आवश्यक नहीं है। उसके आसपास की चमड़ी को स्पिरिट से साफ कर देना ही काफी है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि नाभिनाल पर मां या दूसरे देखभाल करनेवालों के हाथ न लगें। पाउडर (बोरिक या सल्फा) का भी अधिक उपयोग नहीं करना

चाहिए, क्योंकि प्रायः इसकी पपड़ियां जम जाती हैं और उससे बच्चे को तकलीफ होती है। यदि विकीटाणुकृत पट्टी (गाज़) उपलब्ध न हो सके, तो तो साधारण कपड़े की पट्टी को ही उबालने के बाद सुखाकर विकीटाणुकृत करके बांधा जा सकता है। यदि नाभि के आसपास लाली या सूजन दिखाई पड़े, तो डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए।

नाभिनाल के टुकड़े के गिर जाने के बाद उसके नीचे की सतह मुलायम रहती है और उसको सूखने में कई दिन लग जाते हैं। इसलिए इस सतह को साफ और सूखा रखना चाहिए, ताकि उसे कीटाणुओं की छूत न लग सके। लंगोटी को हमेशा नाभि की मुलायम सतह से नीचे बांधना चाहिए, जिससे वह हिस्सा गीला न हो सके। अगर यह सतह गीली हो जाये और उसमें से कोई तरल पदार्थ बहने लगे, तो उसकी देखभाल और भी सावधानी से करनी चाहिए और फौरन डाक्टर को दिखाना चाहिए।

चित्र १
कपड़े का झूला

बच्चे का बिस्तर
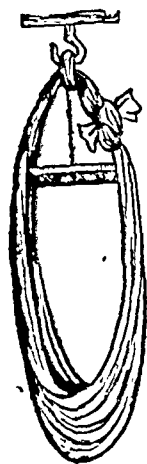
बेहतर तो यही होगा कि बच्चे का बिस्तर एकदम अलग हो। लेकिन बिस्तर इतनी दूर भी नहीं होना चाहिए कि जिससे मां को बच्चे की देखभाल और सार-संभार में परेशानी हो। भारत में जन्म के बाद कई हफ्तों तक बच्चे को मां के साथ ही सुलाया जाता है। यह ठीक नहीं है और जहांतक हो सके, इससे बचना चाहिए। ऐसी कई घटनाएं हो गई हैं, जिनमें मां को गहरी नींद आ जाने से बच्चे उसके नीचे दब गये हैं। सरदियों में, जबकि कंबलों व रजाइयों का उपयोग किया जाता है, ऐसा खासतौर पर होने की आशंका हो

सकती है। कई घरों में वच्चों को सुलाने के लिए कपड़े का वना झूला काम में लाया जाता है, जो किसी पुरानी साड़ी, अथवा लंवे मजवूत कपड़े को छत से वांधकर वनाया जाता है (चित्र १)।

इस प्रकार का झूला सस्ता तो पड़ता है, किंतु वच्चे को इसमें अपने हाथ-पैर चलाने की स्वतंत्रता नहीं रहती और वह चारों तरफ से दवा-दबा-सा रहता है। इस तरह के झूले में यही एक असुविधा है, खासतौर पर ऐसी अवस्था में, जवकि वच्चे की नाक सरदी-जुकाम से बंद हो गई हो, या किन्हीं दूसरे कारणों से उसका सांस लेना रुक गया हो।

उन माता-पिताओं के लिए, जो थोड़ा खर्च कर सकते हों, वेंत या लड़की का वना पालना लेना अच्छा रहेगा। यह चारों तरफ से प्लास्टिक की चद्दरों अथवा कपड़े से मढ़ा रहता है, जिससे वच्चे के गिरने का खतरा नहीं रहता। इसे या तो छत से लटकाया जा सकता है, या फिर नीचे के चित्र में दिखाये ढंग से दो कुरसियों के पायों को वांधकर उन पर रखा जा सकता है।

केरल प्रदेश में कपड़े का वना एक विशेप प्रकार का झूला वहुत प्रचलित है, जो काफी सस्ता होता है। इसे मजवूत कपड़े के दो किनारों से लकड़ी या वांस के टुकड़ों को डालकर मजवूती से सीकर और लकड़ी के दो और टुकड़ों से जोड़कर नांद-जैसा वनाया जा सकता है, जैसाकि चित्र २ में दिखाया गया है।
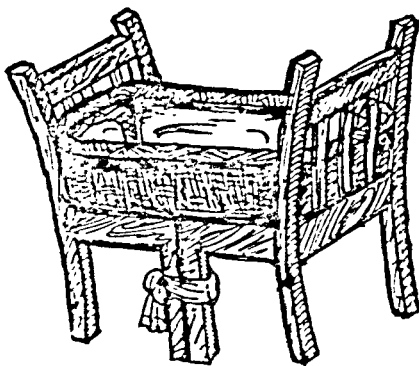
कुरसियों पर रखा पालना

प्लास्टिक अथवा मोमजामे के टुकड़े से ढंकी गद्दी बिछाकर झूले को अच्छी तरह लटका दिया जाता है। यह झूला दो साल तक के बच्चों के लिए काम में लाया जा सकता है। चारों तरफ लगे कपड़े को, जब भी जरूरत हो, धोया जा सकता है। जो लोग थोड़ा अधिक खर्च कर सकते हैं, वे अपने बच्चों के लिए एक अलग बच्चा खाट भी बनवा सकते हैं। किंतु उसकी कमानियां कड़ी और मजबूत होनी चाहिएं, ताकि वे खाट के बीचोंबीच लटकें नहीं। उसके चारों ओर का जंगला इतना ऊंचा होना चाहिए कि बच्चा खड़ा होना सीख जाने पर भी उसमें से गिर न सके। अधिकांश घरों में बच्चे को एक फटी-पुरानी साड़ी या चद्दर को गद्दी पर बिछाकर जमीन पर ही लिटाया जाता है। गद्दी के खराब हो जाने पर उसे धोना कठिन है। अच्छा तो यही होगा कि गद्दी के ऊपर प्लास्टिक अथवा मोमजामे का टुकड़ा बिछा दिया जाये, जिससे बच्चे के पेशाब अथवा टट्टी करने से गद्दी खराब न हो।
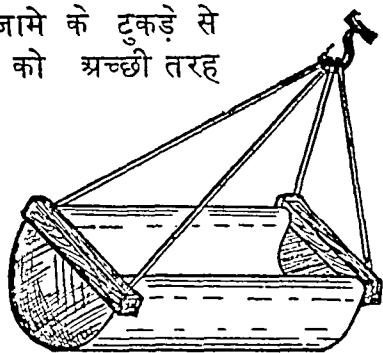
चित्र ३—केरल का झूला

बच्चों को लंगोटी पहनाने का रिवाज अन्य देशों की अपेक्षा हमारे यहां बहुत कम है। इसका उपयोग होना आवश्यक है। इससे बच्चे के टट्टी अथवा पेशाब कर देने पर बिस्तर तथा स्वयं उसके अथवा मां के कपड़े खराब नहीं होने पाते। किंतु साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा गीली लंगोटी में ही देर तक न पड़ा रहे। इससे उसके लंगोटी में ढंके रहनेवाले भाग में फुंसी तथा खुजली हो जाने की संभावना रहती है। जब भी लंगोटी बदली

जाये, उससे ढंके भाग को साफ करके उस पर जरा-सा तेल लगा देना चाहिए । लंगोटी को हलका साबुन लगाकर फौरन ही धो डालना चाहिए । कभी-कभी इन लंगोटियों में अमोनिया की बू आने लगती है । यदि ऐसा हो, तो इन्हें अच्छी तरह उबालकर ही काम में लाया जाना चाहिए ।

लंगोटी किसी भी प्रकार के हलके तथा ऐसे सूती कपड़े की बनानी चाहिए, जो पानी सोखनेवाला हो । खुरदरे कपड़े का उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि खुरदरे कपड़े बच्चे की नरम चमड़ी पर चुभते हैं, जिससे वह परेशानी महसूस करता है । गंदे लंगोट तथा दूसरे कपड़ों को इधर-

चित्र ४—लंगोटी बनाना
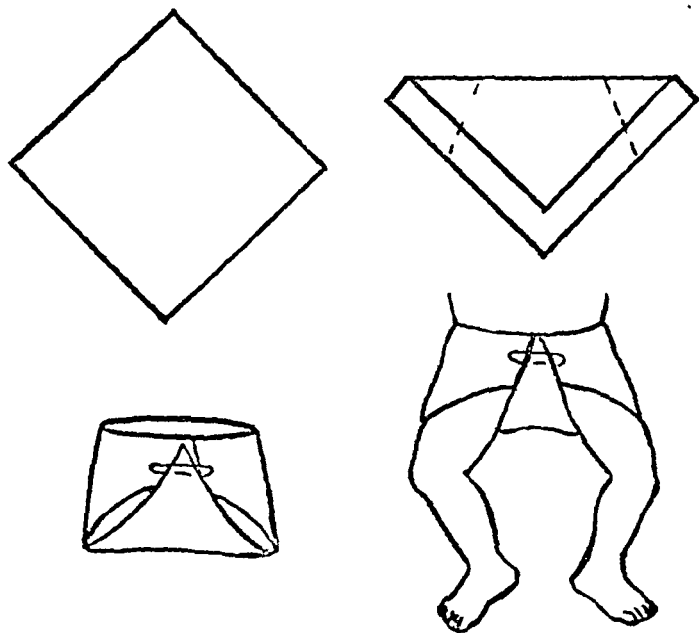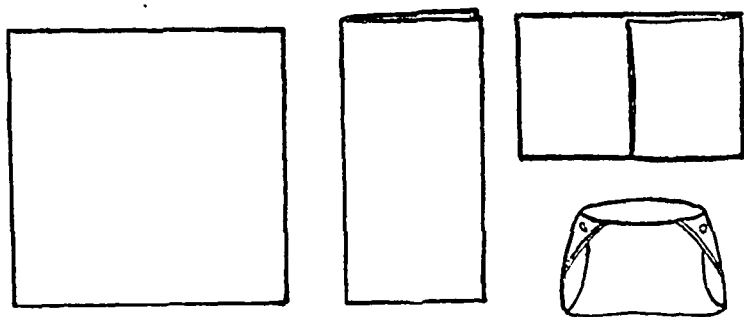
चित्र ५—लंगोटी बनाने का एक और तरीका

उधर डालने के बजाय एक कपड़े में लपेटकर रखना चाहिए। उनको खुला छोड़ देने से उन पर मक्खियां बैठेंगी और फिर वहां से भोजन अथवा बच्चे की दूध पीने की बोतलों पर कीटाणुओं को ले जायेंगी, जिससे छूत लगने की संभावना रहती है। लंगोटी की ठीक तरह से सफाई करने से लंगोटी से ढंके स्थल पर पैदा होनेवाली फुंसियों तथा लाली के पैदा होने की संभावना कम हो जाती है। भारत में घरों में रहने की जगह कम होने के कारण लंगोटियों का धोना-सुखाना एक समस्या है, लेकिन इन जरूरी बातों के प्रति लापरवाही का कारण यही नहीं है कि ऐसा करना संभव नहीं है—इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे यहां परंपरा ही दूसरी रही है।

जन्म के तुरंत बाद की कुछ आम समस्याएं

दस्त—पैदा होने के कुछ ही घंटे बाद बच्चे को दस्त होने लगते हैं। शुरू के दो दिनों में तो इनका रंग हरापन लिये हुए काला रहता है, किंतु बाद में भूरा हो जाता है। ३-४ रोज बाद दस्त पीले रंग के होने लगते हैं। यदि बच्चे को पैदा होने के दो दिन बाद तक दस्त न हों, तो डाक्टर को दिखाना आवश्यक है। मां का दूध पीनेवाला बच्चा

साधारणतः दिन में कई बार टट्टी करता है। आरंभ के कुछ हफ्तों में दस्तों की संख्या कुछ अधिक रहती है, किंतु जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है, यह संख्या कम होती जाती है। दरअसल दस्तों की संख्या निश्चित नहीं रहती और उसमें काफी अंतर होता है—खासकर थोड़ी उम्र के (६ से १० महीने तक) बच्चों में। किसीको दिन में ३-४ दस्त होते हैं, तो किसीको दो दिन में एक। लेकिन ज्यादातर बच्चों को दिन में १-२ दस्त होते हैं। यदि बच्चा पूर्णतया स्वस्थ है, तो दिन में सिर्फ एक दस्त ही होना चिंता का कारण नहीं है, पर यह दस्त मुलायम होना चाहिए। दस्त अगर कड़ा हो और बच्चे को जोर लगाना पड़े, तो दूध पिलाने के समयों के बीच उसे थोड़ा पानी दिया जा सकता है। संतरे का रस भी रेचक होने के कारण सहायक होता है। हो सकता है कि जिन बच्चों को कब्ज की शिकायत है, उनके लिए डाक्टर लिक्विड पैराफिन या मिल्क आफ मैगनीशिया, या कभी-कभी ये दोनों, देने की सलाह दे। जहांतक हो सके, अरंडी के तेल का उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह आंतों को तकलीफ देता है। दस्त लाने के लिए भारत के विभिन्न भागों में कई प्रकार की चीजें काम में लाई जाती हैं। कई जगहों पर अरंडी के तेल का प्रयोग किया जाता है, जो कई तरह से हानिकारक होता है। कई स्थानों पर दस्त लाने के लिए बच्चों के गुदा द्वार में रूई के फाहे में नमक की कंकड़ी रखकर और उसे तेल में भिगोकर प्रविष्ट कराने की प्रथा है। ऐसा करना ठीक नहीं है। इसके बजाय थोड़े से साबुन के पानी का एनीमा गुदा में इतना हानिकारक नहीं है, बशर्ते कि इसका प्रयोग कभी-कदास ही किया जाये।

हिचकियां—दूध पीने के बाद आमतौर पर बच्चों को हिचकियां आती हैं। इसका कोई विशेष महत्व नहीं है। आमतौर पर इसके लिए बच्चे को कंधे पर रखकर उसके

पेट को थोड़ा-सा दबाकर उसकी हवा निकाल देना ही काफी है। थोड़ा गरम पानी दे देने से यदि हिचकियां रुक जाती हों, तो उसे देने में कोई हानि नहीं है।

लार बहना और उलटी होना– ये दोनों पैदा होने के कुछ दिनों बाद तक बहुत आम होती हैं। अगर लार अथवा दिया हुआ दूध बहुत ही थोड़ी मात्रा में बहे, तो इसके बारे में चिंता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि कुछ दिनों तक यह आमतौर पर होता ही रहता है। कभी-कभी तो आरंभ के कुछ सप्ताहों तक बच्चा एक-दो बार में काफी मात्रा में दिया हुआ दूध निकाल देता है। इससे भी डरने की जरूरत नहीं। लेकिन अगर बच्चा जन्म से ही पिये हुए दूध का अधिकांश हर बार उलटी करके निकाल दे, या जन्म के एकाध सप्ताह बाद नियमित रूप से कई बार उलटी करने लगे, तो उसे डाक्टर को दिखाना आवश्यक है।

रोना—साधारणतः हर बच्चा थोड़ा-बहुत रोता है, बल्कि पैदा होने के एकदम बाद बच्चे का पहली बार रोना तो उसमें जीवन तथा सांस ले सकने की क्षमता का चिह्न माना जाता है। जन्म के बाद के दिनों में थोड़ा-बहुत रोना बच्चे के फेफड़ों के लिए अच्छा भी है। किंतु यदि बच्चा अत्यधिक और प्रायः रोये, तो इसके कई कारण हो सकते हैं। हो सकता है कि बच्चा भूखा हो और गरमी का मौसम हो, तो उसे प्यास भी लगी हो सकती है। थोड़े बड़े बच्चों में तो इसका पता आसानी से लगाया जा सकता है, क्योंकि वे इन अवस्थाओं में अपना सिर हिलाते हैं और अपने ओंठों को चूसने की तरह चलाते हैं। नवजात अवस्था में अगर बच्चा अगली बार के दूध पिलाने के समय से पहले जागकर रोने लगे, तो उससे उसके भूखे होने का ही अनुमान करना चाहिए। यह रोना धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। ऐसी अवस्था में यदि बच्चे को गोद में ले लिया जाये, तो कुछ देर के लिए तो वह

चुप हो जायेगा, किंतु दूध न पिलाने पर फिर रोने लगेगा। समझदार माताएं बच्चे के भूख के कारण रोने में और पेट-दर्द के कारण रोने में आसानी से भेद कर सकती हैं, क्योंकि जब बच्चा पेट के दर्द के कारण रोता है, तो वह अपने हाथ-पांव पटकता है, चीखता है और साथ ही उसकी वाय भी सरती है।

कभी-कभी पेट-दर्द तथा किसी अन्य प्रकट कारण के विना ही बच्चा घंटों रोता रहता है और तभी चुप होता है, जब उसे गोद में लेकर हलराया या घुमाया जाये। इस तरह के रोने और पेट-दर्द के कारण रोने में भेद यह है कि इसमें न तो बच्चे का पेट ही कड़ा रहता है और न ही उसके पेट से हवा निकलती है। पेट के दर्द के कारण या किसी प्रत्यक्ष कारण के बिना भी बच्चे का रोना उसके दो-तीन हफ्ते की उम्र का हो जाने के बाद आरंभ होता है और ३-४ महीने का हो जाने के बाद तक चलता रहता है। कभी-कभी दोनों साथ-साथ भी चल सकते हैं। मां आमतौर पर शिकायत करती है कि पैदा होने के बाद १५-१६ दिन तक तो बच्चा ठीक रहा, किंतु उसके बाद उसे रोने के ये दौरे आने लगे, जो तीन-तीन, चार-चार घंटों तक रहते हैं। शुरू के महीनों में अधिकतर बच्चों को इस तरह के कुछ दौरे आते ही हैं। किंतु कोई-कोई बच्चा हर रात को दो-दो, तीन-तीन घंटे तक परेशान करता है। माता-पिता बच्चे के इस रोने से काफी परेशान हो जाते हैं। कभी वे दूध पिलाने का समय बदल देते हैं, तो कभी ऊपर का दूध पिलाने लगते हैं, और कभी और कोई तरकीब निकालते हैं। इन सबसे बच्चे के रोने में कोई अंतर नहीं आता। सही बात तो यही है कि इस पेट-दर्द का असली कारण पता नहीं है। किंतु यह तो निश्चित है कि इसका कारण मां के दूध का बच्चे को माफिक न आना ही नहीं है। यह गाय के दूध या किसी भी तरह से बनाकर दिये दूध से भी चलता रहता है। इसीलिए ऊपर का दूध देने पर भी

बच्चे के रोने में कोई अंतर नहीं पड़ता। माता-पिता के लिए सबसे महत्वपूर्ण यह समझ लेना है कि यह बात साधारणतः हर बच्चे के साथ होती है और इससे बच्चे को किसी प्रकार का स्थायी नुकसान नहीं होता। इसके विपरीत अकसर यह उन्हीं बच्चों के साथ होता है, जिनका विकास ठीक तरह से हो रहा है और यह शिकायत सब बच्चों के तीन महीने का होते-होते धीरे-धीरे, अपने-आप ही ठीक हो जाती है।

बच्चे को दूध पिलाकर उसके पेट से हवा निकालना आवश्यक है और जब उसे दर्द उठे, तो उसका निराकरण मां के घुटनों पर उसे पेट के बल लिटाकर अथवा गरम पानी की बोतल से सेंककर या पान की पत्ती को अरंडी के तेल के साथ गरम करके पेट पर बांधकर किया जा सकता है। किंतु इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि ये चीजें इतनी गरम न हों कि बच्चा सहन न कर सके।

कभी-कभी गुनगुने पानी का एनिमा भी लाभप्रद हो सकता है, किंतु इसका प्रयोग भी कभी-कभी ही, जबकि दर्द खास करके बहुत ही तेज हो, करना चाहिए। डाक्टर इसके लिए कोई बेचैनी कम करनेवाली दवा भी दे सकता है। इस दर्द के बहुत आम होने के कारण कई तरह के ग्राइपवाटर बिना किसी विवेक के बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किये जाते हैं। इसको बढ़ावा नहीं देना चाहिए। ग्राइपवाटर का प्रयोग तभी किया जाना चाहिए, जब आपका डाक्टर उसके लिए सलाह दे। बच्चे को शांत करने के लिए झुलाना हानिकारक नहीं है, किंतु इसमें भी सावधानी रखनी चाहिए।

नाक-कान तथा मुंह की देखभाल—नहलाने के बाद बच्चे का बदन पोंछते समय उसकी नाक के आस-पास लगा हुआ मैल हलके हाथों से साफ कर देना चाहिए। उसको खुरचना नहीं चाहिए। कानों की सफाई करते समय सिर्फ

चित्र ६—वेवी टव में नहलाना

कान के वाहरी हिस्से की ही सफाई करनी चाहिए, अंदर के भाग की नहीं। कान से पीव वहता हो, तो उसे डाक्टर को दिखाना चाहिए। वच्चे के ओंठ तथा जीभ की भी देखभाल करते रहना चाहिए, खासतौर पर जव वच्चा खाना-पीना वंद कर दे। जीभ पर थ्रश नामक जीवाणु के कारण पड़े सफेद चित्तीदार धव्वों का इलाज डाक्टर की सलाह से करना चाहिए।

स्नान—भारत के कई हिस्सों में वच्चों को तेल की मालिश करके और वेसन का उवटन लगाकर नहलाने की प्रथा है। गरम जलवायु में इसके कई लाभ हैं। आमतौर पर कान में भी कुछ तेल डाल दिया जाता है। कभी-कदास किया जाये, तो यह भी गुणकारी है। भारत तथा पश्चिमी देशों में वच्चों को स्नान कराने के अलग-अलग तरीके हैं। सामान्यत: प्रच-लित तरीकों के चित्र इस तथा अगले पृष्ठ पर दिये गये हैं।

चित्र ७— टव के विना स्नान करवाना

चित्र ८– पटले पर स्नान करवाना

स्नान कराने और बच्चे की त्वचा बिलकुल सुखा लेने के बाद बच्चे के शरीर पर, और खासकर जोड़-वाले स्थानों, जैसे, बगल, कोहनी, घुटना, जांघ आदि, पर टैलकम पाउडर छिड़कना चाहिए। किंतु इसका प्रयोग अधिक मात्रा में नहीं करना चाहिए, अन्यथा पाउडर की पपड़ी जम जाने से बच्चे को तकलीफ हो सकती है। पाउडर के डिब्बे को बच्चे के शरीर के एकदम पास लाकर भी नहीं छिड़कना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे की सांस के साथ पाउडर के भीतर चले जाने का अंदेशा रहता है। पाउडर की जगह जोड़ों पर तेल भी लगाया जा सकता है। भारत में इसीका रिवाज है और गरम जलवायु वाले स्थानों के लिए यह उपयुक्त भी है।

धूप स्नान—अनुकूल मौसम में बच्चों को धूप स्नान भी दिया जा सकता है। यह बच्चे के एक महीने का होने के बाद शुरू किया जा सकता है। प्रारंभ में १-२ मिनट के लिए ही धूप में लिटाना चाहिए, फिर धीरे-धीरे समय को बढ़ाकर १५ मिनट सुबह और १५ मिनट शाम तक किया जा सकता है। धूप स्नान न दिया जा सके, तो उसे जितनी अधिक देर हो सके, बाहर खुले में, छांह के अंदर रखना चाहिए।

बच्चे को उठाने का तरीका—बच्चे को बांह से पकड़-कर न तो उठाना चाहिए और न ही खींचना चाहिए। अपना दाहिना हाथ उसकी कमर के नीचे रखकर बांया हाथ और बाजू उसकी पीठ व सिर के नीचे सरका दें। बच्चे की करवट

बदलते समय उसे केवल कंधे से ही न घुमायें।

पूरे समय से पहले पैदा होनेवाले शिशु की देखभाल

पूरे समय से पहले जन्म लेनेवाले बच्चे प्रायः काफी छोटे होते हैं और औसत वजन और लंबाई से कम होते हैं। ऐसे बच्चों का जीवित रहना इस बात पर निर्भर करता है कि जन्म के समय वे कितने दुबले-पतले और कमजोर हैं तथा उन्हें विशिष्ट प्रकार की चिकित्सा तथा देखभाल की क्या क्या सुविधाएं उपलब्ध हैं।

ऐसे बच्चों को लगभग स्थिर ताप पर रखा जाता है, जो न तो अधिक होता है और न ही कम, क्योंकि उन पर सरदी अथवा गरमी का असर बड़ी जल्दी होता है। इनके लिए, यदि उपलब्ध हों, तो विशेष प्रकार के विद्युत उष्णा-गार (इनक्युबेटर) प्रयोग में लाये जाते हैं, जिनमें ताप को उपयुक्त अंश पर काफी समय तक स्थिर करके रखा जा सकता है। उष्णागार के स्थान पर ऊपर आधा ढक्कन लगा-कर नरम अस्तर लगे लकड़ी के खोके या कपड़े की डलिया का भी उपयोग किया जा सकता है। मौसम के अनुसार गरम या ठंडा करके कमरे में भी आवश्यक ताप बनाये रखना संभव है। साथ ही यदि नर्स या डाक्टर की राय हो, तो बच्चे के झूले के पास गरम पानी की बोतलें भी रखी जा सकती हैं। समय से पूर्व पैदा हुए बच्चों को अत्यंत ही सावधानी से खिलाना-पिलाना चाहिए। कमजोर बच्चे न निगल सकते हैं और न चूस ही सकते हैं। नर्स को भी ऐसे बच्चों को खिलाने-पिलाने के काम में अनुभवी होना चाहिए। जबतक बच्चा चूसने काबिल न हो जाये, पानी तथा दूध पिलाने के लिए एक विशेष प्रकार का ड्रापर काम में लाया जाता है, जिसके छोर पर रबड़ की नली लगी होती है। इस ड्रापर को काम में लाते समय इस बात का ध्यान
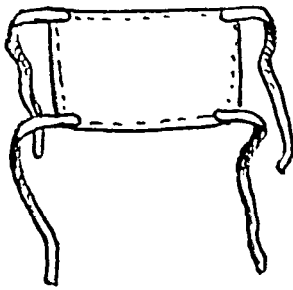
चित्र ९—मुंह पर बांधने की नकाब

रखना चाहिए कि उसकी नोक बच्चे की जबान पर रहे न कि उसके नीचे; क्योंकि बच्चे की जीभ के तालू से चिपकने का खतरा रहता है। साधारणतः ऐसे बच्चों को दो-तीन रोज मुंह से कुछ भी नहीं दिया जाता है। इसके बाद भी एक-दो रोज तक थोड़ी-थोड़ी मात्रा में सिर्फ ग्लूकोज़ का पानी ही दिया जाता है और फिर दूध देना प्रारंभ किया जाता है।

बच्चों को छूत से बचाना चाहिए। मां के अलावा सिर्फ नर्स को या उसी व्यक्ति को, जो बच्चे की देखभाल कर रहा हो, कमरे में आने देना चाहिए। देखभाल करनेवाले को बच्चे को उठाते अथवा खिलाते-पिलाते समय अपने हाथों को अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए। मां को अथवा उस व्यक्ति को सरदी या जुकाम हो, तो मुंह पर कपड़े की नकाब बांधने के बाद ही बच्चे का काम करना चाहिए।

चित्र १०—मां को जुकाम होने पर उसके मुंह पर बंधी नकाब

: २ :

स्तन-पान

बच्चे के पहले साल में उसके लिए निस्संदेह मां का दूध ही आदर्श आहार है; क्योंकि बच्चे के लिए यही प्राकृतिक भोजन है। दूसरे, मां के दूध की बनावट ऐसी है कि शिशु के हाजमे और उसकी वृद्धि की गति के लिए यही सबसे उपयुक्त है। लगभग सब माताएं—चाहे वे कितनी ही अधिक पढ़ी-लिखी तथा सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहनेवाली हों—अपने बच्चे को सफलतापूर्वक स्तन-पान करा सकती हैं। पश्चिमी देशों में बच्चों को कृत्रिम रीति से दुग्ध-पान कराने की ओर अधिक झुकाव है। लेकिन अपने देश में तो बच्चे को स्तन-पान कराना ही सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि एक तो गरम जलवायु में बच्चों के लिए कीटाणुरहित पेय तैयार करने के तरीके अमल में लाना कठिन है, दूसरे औसत भारतीय घरों में स्वच्छता की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। इसके कारण ही यहां पेट के रोगों का इतना प्रकोप है। इसलिए उन माताओं को भी, जो पढ़ाने अथवा दफ्तर में काम करने जाती हैं, काम के समय में भी अपने बच्चे को अपना ही दूध पिलाने की व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

स्तन-पान कब, कितनी देर और कैसे कराया जाये ?—आमतौर पर बच्चे के पैदा होने के १२ या २४ घंटे बाद से ही उसे दूध पिलाना शुरू किया जा सकता है। शुरू में तो बच्चे को सिर्फ ३-४ मिनट तक ही दूध पिलाना चाहिए, जिससे माता को भी शिशु को दूध पिलाने का अभ्यास हो

जाये। बाद में, चौथे दिन से, जब दूध का प्रवाह नियमित हो जाये, प्रत्येक बार १० मिनट तक पिलाना काफी है। भारत के कई भागों में शुरू के १-२ दिन तक दूध पिलाने से पहले थोड़े पानी में शहद या चीनी देने की प्रथा है। पानी पिलाना अच्छा है, खासतौर पर गरमी के मौसम में। किंतु पिलाने से पहले पानी को उबाल लेना जरूरी है, ताकि वह कीटाणुरहित हो जाये। पानी पिलाने के चम्मच को भी उबाल लेना चाहिए।

बच्चे को कितनी बार स्तन-पान कराया जाये, इसका सबसे बड़ा पैमाना बच्चे की भूख ही है। दूध पिलाने से पहले इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए कि बच्चा भूख के कारण ही रो रहा है, लंगोटी गीली हो जाने या किसी और असुविधा के कारण नहीं।

कुछ हफ्तों बाद बच्चे आमतौर पर अपने-आपको ३-४ घंटे के अंतर से स्तन-पान करने के नियमित समय-क्रम के अनुसार ढाल लेते हैं। यह प्रायः हो सकता है कि रात में एक-आध बार दूध पीने के समय वे सोते रह जायें, किंतु फिर भी दूध पिलाने के लिए घड़ी के बजाय बच्चे की भूख पर ही निर्भर रहना ज्यादा ठीक है।

इस समय-क्रम के अनुसार बच्चे को प्रारंभ के दो महीनों में २४ घंटे में सामान्यतः ७ बार और इसके बाद २४ घंटों में ६ बार दूध पिलाना होगा। ज्यादा बार मां का दूध पिलाने का

चित्र ११—स्तन-पान कराने का तरीक

परिणाम यह होगा कि मां को कम आराम मिलेगा और बच्चे की पाचन क्रिया पर भी अनुचित जोर पड़ेगा।

दूध पिलाते समय मां को बहुत ही आराम से और खुलकर बैठना चाहिए। उसकी पीठ आरामदेह कुरसी या दीवार से टिकी रहनी चाहिए। दूध पिलाते समय उसे स्तन को अपनी उंगलियों से पकड़े रहना चाहिए, जैसाकि चित्र ११ में दिखाया गया है, ताकि बच्चे को नाक् से सांस लेने में रुकावट न हो। बच्चा दूध पीते समय अगर स्तन के चूचुक के अलावा उसके चारों ओर का गहरे रंगवाला भाग भी अपने मुंह में ले ले, तो उसे दूध पीने में आसानी होती है।

दूध पिलाने के बाद बच्चे चूचुक को कभी-कभी मुंह में कस लेते हैं। ऐसे में यदि झटके के साथ बच्चे को अलग किया जाये, तो स्तन को चोट पहुंच सकती है। इससे बचने के लिए दूध पिलाने के बाद बच्चे के दोनों गालों को धीरे से दबाकर उसका मुंह खोलकर स्तन हटा लेना चाहिए। बच्चा अगर पूरी तरह दूध पी लेने के पूर्व ही सो जाये, तो उसे धीरे-धीरे थपथपाना चाहिए, या मां को आहिस्ता से अपना स्तन इस तरह हटा लेना चाहिए कि चूचुक का स्थान बदल जाये। इससे बच्चा जागकर दूध पीने लगेगा। दूध पीते समय यदि बच्चे के पेट में कुछ हवा चली गई हो, तो चित्र १२ या १३ के अनुसार बच्चे को अपने कंधे अथवा गोद में लेने के बाद उसकी

चित्र १२—दूध पीते समय पेट में गई हवा को निकालने के लिए बच्चे को कंधे पर लेकर उसकी पीठ थपथपाइये

चित्र १३—हवा निकालने का एक और तरीका

पीठ दबाकर हवा निकाल देनी चाहिए। कुछ बच्चों के साथ, जो बहुत ही ललककर दूध पीते हैं, यह क्रिया कई बार दुहरानी पड़ती है। इसे बच्चे को एक स्तन से दूसरे स्तन पर बदलते समय भी किया जा सकता है।

स्तनों तथा चूचुक की देख-भाल—गर्भ के साथ-साथ मां के स्तनों का भार व आकार भी बढ़ता जाता है। ठीक आकार की चोली या अंगिया का सहारा रहने से स्तनों के बढ़ते हुए भार तथा आकार से होनेवाली तकलीफ कम हो जाती है। किंतु चोली इतनी कसी हुई नहीं होनी चाहिए कि चूचुक दबें या उन पर अनावश्यक जोर पड़े। गर्भावस्था के आखिरी महीनों में चूचुक नियमित रूप से रोज धोने चाहिएं। यदि वे सपाट या अंदर की ओर घुसे हुए हों, तो उन्हें रोज उंगलियों से बाहर निकालकर ठीक करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके पहले उन पर थोड़ा तेल लगा देना चाहिए। चूचुक ठीक करने के लिए विशेष प्रकार के बने 'निपलशील्ड' का भी उपयोग किया जा सकता है (देखिये चित्र १४, १५ तथा १६)।

स्तनों में जब पहली बार दूध भरता है, तो कुछ तकलीफ हो सकती है, किंतु जैसे-जैसे बच्चा दूध पीता जाता है, यह तकलीफ भी कम होती जाती है। यदि स्तनों में दूध अधिक भर आये और वे सख्त हो जायें, तो उन पर थोड़ी देर तक बर्फ की थैली रखने से आराम मिलता है। स्तनों के इस तरह
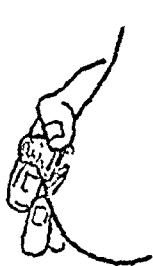
चित्र १४
स्वस्थ चूचुक

चित्र १५
अंदर धंसा हुआ चूचुक

चित्र १६
धंसे हुए चूचुक को निपल-शील्ड से सही करना

से भर आने का अर्थ यह नहीं है कि बच्चे को ऊपर का दूध देना प्रारंभ कर दिया जाये। स्तनों का भारीपन तथा कड़ापन थोड़ी देर तक ही रहता है। यदि चूचुकों में दरारें पड़ जायें, या घाव हो जायें, तो उनके ठीक हो जाने तक निपल-शील्ड का उपयोग करना चाहिए। किंतु इनका प्रयोग करने के बाद उन्हें साफ करके अच्छी तरह उबालकर कीटाणु-रहित करना न भूलें, और दुबारा इस्तेमाल करने के पहले उन्हें एक बार फिर अच्छी तरह उबाल लें। यदि निपलशील्ड लगाने पर भी बच्चा दूध न पी सकता हो, तो स्तनों में से दूध हाथों से दबाकर अथवा स्तन-पंप की मदद से निकालकर बोतल द्वारा बच्चे को पिलाना चाहिए (चित्र १७, १८, १९)। प्रत्येक बार दूध पिलाने या निकालने से पहले पंप या हाथों तथा चूचुकों को अच्छी तरह से साफ कर लेना जरूरी है।

दूध का प्रवाह कम होने पर—माताएं अकसर यह महसूस करके कि उनका दूध बच्चे को पूरा नहीं पड़ रहा है, बच्चे को ऊपर का दूध पिलाना प्रारंभ कर देती हैं। यह याद रखना चाहिए कि प्रसव के २-३ सप्ताह के बाद कुछ समय
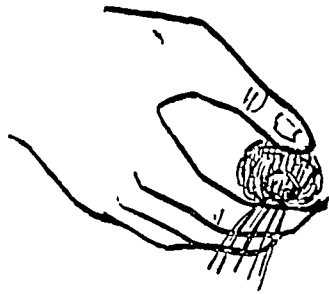
चित्र १७—हाथों से दूध निकालने का गलत तरीका। इसमें केवल चूचुक ही दब रहा है।

चित्र १८—सही तरीका। उंगलियां तथा अंगूठा चूचुक के आस-पास के भूरे हिस्से को दबा रहे हैं।

के लिए कई माताओं के स्तनों से दूध का प्रवाह कम हो जाता है। लेकिन २४ घंटों में लगातार ७ बार के समय-क्रम से बच्चे को दूध पिलाने से दूध का प्रवाह धीरे-धीरे फिर बढ़ जाता है। इसलिए मां को यदि यह लगे कि दूध कम उतर रहा है, तो बजाय कम बार दूध पिलाने के लगातार उतनी ही बार दूध पिलाते रहना चाहिए, जितनी बार कि वह पहले पिलाती रही है। आवश्यक होने पर मां के दूध की कमी को १-२ औंस गाय के दूध और पानी के मिश्रण से पूरा किया जा सकता है, किंतु दिन भर में स्तन-पान कराने की संख्या कम नहीं करनी चाहिए। कुछ दिनों तक यही क्रम जारी रखा गया, तो मां के फिर ठीक-ठीक दूध उतरने लगेगा।

इस प्रकार दूध कम उतरने का एक दूसरा कारण यह है कि हर बार दूध पिलाने के बाद स्तन पूरी तरह से खाली नहीं होते। प्रसव के बाद शुरू के कुछ दिनों तक, या समय से पूर्व ही पैदा हुए, या कमजोर बच्चों के मामले में ऐसा खासकर होता है। इसकी पहचान यह है कि दूध पिलाने के बाद स्तन
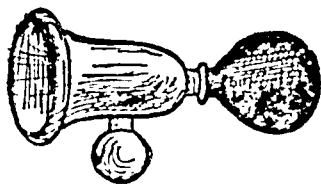
चित्र १९—स्तन-पंप

को दबाने पर उससे दूध की धार निकलने लगती है। तब स्तन को हाथ से या पंप द्वारा खाली कर देना चाहिए। इसका तीसरा बड़ा कारण है माता में आत्म-विश्वास की कमी। ऐसी अवस्था में माता को हमेशा उत्साहित करते रहना चाहिए और उसमें ऐसा विश्वास पैदा करते रहना चाहिए कि बच्चे के लायक उसके स्तनों में काफी दूध उतरता रहेगा। दूध की कमी चिंता, अनिद्रा और प्रसव के शीघ्र बाद ही घर के काम-काज करने के कारण भी होती है।

बच्चे को मां से पूरा दूध नहीं मिल पा रहा है, इसकी पहचान यह है कि वह एक बार दूध पिलाने के बाद ३ घंटे तक संतुष्ट न रहकर २ घंटे या उससे भी कम समय के भीतर भूख के मारे रोने लगेगा। साथ ही उसके वजन में भी बढ़ती नहीं होगी। यदि बच्चे को पूरी तरह से पोषण मिले, तो शुरू के तीन महीनों में बच्चे का वजन प्रतिदिन कोई १ औंस और उसके बाद अगले तीन महीनों तक कोई १-२ से ३-४ औंस तक प्रतिदिन तक बढ़ता है। २४ घंटों में बच्चे को कितना दूध मिल रहा है, इसका पता बच्चे को २४ घंटों में प्रत्येक बार दूध पिलाने से पहले और बाद में तौलने से हो जाता है। इस बात का खासतौर पर ध्यान रखना चाहिए कि दूध पिलाने से पहले और बाद में तौलते समय बच्चे को वही कपड़े पहनाये रहें—भले ही वे बच्चे के पेशाब आदि में गीले हो गये हों। प्रत्येक बार दोनों तौलों का अंतर निकालने के बाद उसमें २४ घंटों का कुल अंतर जोड़ दिया जाता है। प्रारंभ के छः महीनों में अंदाज से उसे २४ घंटों में वजन के हर पौंड के कोई २॥ औंस के हिसाब से दूध मिलना चाहिए। यदि दूध की मात्रा इससे कम बैठती हो, तब बीच में ३-४ स्तन-पानों के साथ एकाध औंस गाय के दूध और पानी का मिश्रण या बकरी या डिब्बे का दूध-पाउडर दिया जा सकता है। स्तन-पानों की संख्या को कम करना या उसके स्थान पर सिर्फ

ऊपर का दूध दिया जाना उचित नहीं है। यह आशा करनी चाहिए कि समय से और सबर से मां के स्तनों में ही काफी दूध उतरने लगेगा और बच्चे को ऊपर के दूध की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

किंतु यदि मां के दूध की कुल मात्रा बच्चे की जरूरत से बहुत ही कम, यानी आधी, हो, तो ऊपर के दूध की निश्चय ही आवश्यकता पड़ेगी और इसके लिए बोतल का दूध पिलाने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं है।

दूध पिलानेवाली मां की खुराक और देखभाल—यह स्वाभाविक ही है कि मां को अपनी अपेक्षा अपने बच्चे की अधिक चिंता होती है। किंतु यह याद रखना चाहिए कि बच्चे के लिए समुचित मात्रा में दूध उतरे, इसके लिए मां का भोजन भी पौष्टिक होना चाहिए। उसके भोजन में दूध, दही, मक्खन, घी आदि का समावेश होना चाहिए। अगर इन सब चीजों के प्रयोग से उसका वजन ज्यादा बढ़ जाता हो, तो उसे मक्खन निकला दूध तथा उससे बनाई गई अन्य खाद्य वस्तुएं लेनी चाहिए। फल तथा हरी सब्जियां भी काफी मात्रा में लेनी चाहिएं। वे माताएं, जो शाकाहारी हैं और आर्थिक स्थिति के कारण दूध या दूध से बनी चीजें न ले पाती हों, उन्हें इसकी पूर्ति दूसरे प्रोटीन युक्त पदार्थों से करनी चाहिए, जैसे, दालें, चना, भुनी या उबाली हुई मूंगफली आदि। किंतु इन सब चीजों का प्रयोग उतनी ही मात्रा में करना चाहिए, जितना कि मां आसानी से पचा सके। भारत के कई भागों में दूध पिलानेवाली मां को दाल आदि नहीं खाने दिया जाता है। ऐसा समझा जाता है कि इससे उसे नुकसान पहुंचता है। किंतु यह विचार बेबुनियाद है। मांसाहारी माताओं को एक अंडा रोज और दिन भर में कम-से-कम एक बार मांस (चर्बी रहित), मुर्गा, या लिवर के साथ मछली लेनी चाहिए। मैदा की रोटी की अपेक्षा गेहूं की रोटी

तथा कम पके चावल की जगह ज्यादा उबले चावल लेना अधिक उचित है। उसे काफी मात्रा में तरल पदार्थ लेने चाहिएं। पानी तथा दूध के अलावा इसकी पूर्ति हलकी चाय, सब्जियों के शोरबे तथा फलों के रस आदि से की जा सकती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मछलियों की कुछ किस्में (जैसे, छोटी शार्क और स्प्रैट), लहसुन तथा भीगे हुए बिनौलों के दूध, माल्ट, आदि से मां का दूध बढ़ता है और शायद यह ठीक भी है। भारत के कई भागों में दूध पिलाने-वाली माताओं की खुराक के संबंध में कई बंधन व अंधविश्वास हैं। ये इस मान्यता पर आधारित हैं कि खुराक के कुछ अनजाने तत्व, जो बच्चे के लिए हानिकर हो सकते हैं, मां के दूध में मिल जाते हैं। यह सही है कि मां जो कुछ दवाइयां आदि लेती है, वे, और कभी-कभी खाने के साथ भी कुछ पदार्थ मां के भोजन में आ जाते हैं, जिनका असर मां के दूध में आ जा सकता है। फिर भी वैज्ञानिक आधार पर यह कहना कठिन है कि बच्चे को जो कै और दस्त जैसी आम बीमारियां हो जाती हैं, उनका संबंध मां की खुराक से हो। इन गलत धारणाओं के कारण संतरे और केले जैसे फल मां की खुराक में से निकाल दिये जाते हैं। इसी प्रकार दक्षिण भारत में दूध पिलानेवाली माताओं को खामखा ही साधारण मिर्च-मसालों के साथ काफी मात्रा में लहसुन दी जाती है। आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी के अनुसार हमारे यहां बच्चे को स्तन-पान करानेवाली मां के भोजन के बारे में यही कहा जा सकता है कि वह हलका तथा शीघ्रपाची (उदाहरण के लिए, तले हुए खाद्य पदार्थों की बजाय उबले हुए खाद्य, सख्त रेशेवाली सब्जियों की जगह मुलायम सब्जियां) और विटामिनों की बहुतायतवाला होना चाहिए। उसमें दूध अथवा दूध से बनी चीजें, या कम मात्रा में दालें भी होनी चाहिएं।

स्तन-पान छुड़ाना तथा स्तन-पान के साथ अन्य खाद्य-पदार्थ देना--भारत तथा कई अन्य पड़ौसी देशों के बच्चों को प्राय: १२ महीनों के बाद तक भी स्तन-पान कराया जाता है। ऐसा कुछ तो आर्थिक कारणों से है, क्योंकि गरीब माताएं बच्चों के लिए दूध या अन्य शिशु-खाद्य नहीं खरीद सकतीं; और कुछ दैशिक रीति-रिवाजों के कारण भी है। पश्चिमी देशों में आजकल यह रीति है कि बच्चे को ९ महीने में स्तन-पान बंद करा दिया जाता है। इसकी शुरुआत, बच्चे के ६ महीने का होने पर, उसे दिन में एक-दो बार बोतल का दूध पिलाने से की जाती है और धीरे-धीरे इसकी मात्रा इस तरह बढ़ाते जाते हैं कि उसके ९ महीने के होने तक उसका स्तन-पान बिलकुल ही छुड़ा दिया जाता है। भारत में अधिकतर बच्चों को माता के दूध के स्थान पर दूसरे पौष्टिक खाद्य-पदार्थ, जैसे, गाय-भैंस का शुद्ध दूध अथवा दूध से बने पदार्थ, उपलब्ध नहीं हो पाते। चावल और अन्य दालों में प्रोटीन की मात्रा अधिक नहीं होती। इसलिए उसके विकास और जीवन के लिए काफी समय तक स्तन-पान कराना आवश्यक है। फिर भी बच्चे के ६ महीने का हो जाने के बाद सिर्फ मां का दूध ही उसकी वृद्धि के लिए अपर्याप्त है और दूसरे खाद्य-पदार्थों से उसकी पूर्ति करना आवश्यक है।

यूरोप तथा अमरीका में अब यह प्रवृत्ति हो चली है कि बच्चे के ३-४ माह का हो जाने पर स्तन-पान के साथ-साथ उसे थोड़ी-थोड़ी मात्रा में तरल भोजन देना प्रारंभ कर दिया जाता है, ताकि उसे वे विटामिन तथा खनिज तत्व दिये जा सकें, जो मां के दूध में नहीं होते और उसे अतिरिक्त शक्ति प्राप्त हो सके तथा साथ ही उसे नये स्वादों का भी अभ्यस्त किया जा सके। यह सच भी है कि लंबे समय तक स्तन-पान करनेवाला बच्चा दूसरे प्रकार के दूध या तरल खाद्य-पदार्थ लेने में अरुचि दिखाता है। इस-

लिए मिश्रित खुराक जल्दी ही शुरू कर देना आवश्यक है। लेकिन भारत तथा उसके पड़ौसी देशों में स्वास्थ्य विज्ञान की जानकारी और सफाई का स्तर काफी नीचा है। इस कारण यहां हमेशा ही खाने-पीने की चीजों में कीटाणुओं की छूत लगने का खतरा बना रहता है। इसकी वजह से कई प्रकार की छूत—खासतौर पर छोटे बच्चों को दस्त आदि, जिसके कारण इन देशों में बड़ी संख्या में बच्चे मौत के शिकार होते हैं—लगने की आशंका रहती है। यह खतरा इतना बड़ा है कि यह ज्यादा अच्छा है कि यहां पर बच्चे को छः महीने का हो जाने तक सिर्फ मां का दूध ही दिया जाता रहे। टमाटर तथा नारंगी का रस देने तक में कीटाणुओं के जाने का खतरा रहता है।

भारत तथा हमारे पड़ौसी देशों में यह देखा गया है कि पहले छः महीनों में केवल मां का दूध ही दिया जाने पर भी बच्चे की वृद्धि खासी होती रहती है और उसका वजन भी समुचित रूप से बढ़ता रहता है; न विटामिनों की ही कमी रहती है। यह बात कुछ भागों को, जहां बच्चों में बेरी-बेरी रोग का प्रकोप हो जाता है, छोड़कर है। लेकिन ६ महीने के बाद फिर सिर्फ मां के दूध पर ही बच्चे की वृद्धि नहीं हो पाती। इसलिए यह ध्यान रखना जरूरी है कि मां को संतुलित एवं पौष्टिक भोजन मिलता रहे, जिससे उसके दूध में खनिज पदार्थों तथा विटामिनों की कमी न रहने पाये। केवल वहीं, जहां बच्चे में असमुचित वृद्धि या न्यून पोषण के चिह्न प्रकट हों, उसे ६ महीने का होने के पहले अतिरिक्त कृत्रिम आहार देना चाहिए। तरल तथा अतिरिक्त खाद्यों की आवश्यकता तो बच्चे के ६ मास का हो जाने के बाद ही पड़ती है। मां को अगर साफ चम्मच तथा पानी का उपयोग सिखाया जा सके, तो बच्चे को २ मास की अवस्था से ही दिन में एक चाय का चम्मच मछली का तेल दिया जा सकता है। इसे बढ़ाकर दिन में एक-एक चम्मच

दो बार तक ले जाया जा सकता है और बच्चे के २-३ महीने का होते-होते उसे पानी में घोलकर विटामिन 'सी' की एक गोली देना शुरू किया जा सकता है। जिन घरों में स्वच्छता का स्तर ऊंचा है और मक्खियां नहीं हैं, वहां माताएं अध्याय ४ के अंत में दिये निर्देशों के अनुसार बच्चे को तरल (अनाज, सब्जियां, फल आदि) खाद्य देने की शुरुआत जल्दी कर सकती हैं। स्तन-पान ६ मास की अवस्था के बाद भी १-१॥ साल की आयु तक जारी रखा जा सकता है, लेकिन उसके साथ अनाज से बने खाद्य अवश्य दिये जाने चाहिएं। यह देखते हुए कि हमारे अधिकांश बच्चों में रक्त की कमी होती है, बच्चे को (अगर उसे मिलनेवाले भोजन में लोहे की प्रचुरता न हो, तो) द्रव रूप में कुछ लोहा दिया जा सकता है। मां के दूध के पर्याप्त न होने की स्थिति में बच्चे की भूख शांत करने के लिए उसे कॉफी या चाय देने की प्रथा एकदम गलत और हानिकारक है।

: ३ :

दूध न उतरने पर बच्चे का भोजन

मां के स्तनों में दूध न उतरने के कारण अथवा प्रसव के बाद ही माता की लंबी बीमारी के कारण कुछ बच्चों को ऊपर के दूध पर पालना जरूरी हो जाता है। इन परिस्थितियों में हमारे यहां निम्नलिखित चीजें इस्तेमाल की जा सकती हैं :

१. गाय का दूध---समुचित रूप से पतला करने के बाद।
२. भैंस का दूध---समुचित रूप से पतला करने के बाद।
३. बकरी का दूध, अगर उपलब्ध हो सके।
४. डिब्बे का दूध, जैसे गाय का जमाया हुआ मीठा दूध, या गाय का तरल तथा फीका डिब्बाबंद दूध (जैसे, लिब्बीज या कारनेशन)।
५. पाउडर के रूप में गाय का कुछ परिवर्द्धित[1] तथा चीनी मिला डिब्बाबंद दूध, (जैसे, ग्लैक्सो, काऊ एंड गेट, तथा ड्यूमैक्स आदि)। अब हिंदुस्तान में भी भैंस का दूध उचित परिवर्द्धित रूप में बनने तथा पाउडर के रूप में मिलने लगा है (जैसे, 'अमुल')।

भारतवर्ष में शुद्ध दूध के न मिलने, काफी तथा चाय के प्रचार के कारण तथा बढ़ती हुई आबादी और खासकर शिक्षित वर्ग पर शिशु-पोषण की पश्चिमी देशों की पद्धतियों की छाप के कारण बच्चों के आहार से संबंधित रीति-रिवाजों पर काफी असर पड़ा है। उदाहरण के लिए, डिब्बे के जमाये हुए दूध का, दक्षिण भारत में काफी का, और

---

[1]परिवर्द्धित दूध में बच्चे की आवश्यकतानुसार लवणों तथा अन्य तत्वों का कमी-बढ़ती करके बच्चों के पाचनयोग्य बना दिया जाता है।—अ०

त्तर भारत में चाय का रिवाज बढ़ता जा रहा है, क्योंकि चीजें अपेक्षाकृत सस्ती पड़ती हैं।

शिशुपोषण के बारे में भारतीय माताओं को कोई राय ते समय न तो यह संभव है और न वांछनीय ही कि च्चों को खिलाने-पिलाने के बारे में भारत के विभिन्न भागों था वर्गों के लिए कोई एक निश्चित स्तर कायम किया ा सके। इसके कारण निम्नलिखित हैं :

१. गाय अथवा भैंस का शुद्ध दूध अधिकांश गरीब परिवारों की पहुंच के बाहर है और इसलिए उसके समरूप कोई दूसरा उचित विकल्प बताना पड़ता है।
२. बच्चों को खिलाने-पिलाने के रीति-रिवाज भारत के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न हैं—यहांतक कि एक ही स्थान की विभिन्न जातियों में भी अलग-अलग हैं। जैसे, कई जगहों पर एक साल का हो जाने के बाद भी बच्चे का स्तन-पान जारी रखने की प्रथा भारतीय परिस्थितियों में वांछनीय है और इसका विरोध नहीं करना चाहिए। किंतु कई स्थानों पर बच्चे को एक साल का हो जाने पर भी तरल भोजन का न दिया जाना गलत है, और उसको बदलना आवश्यक है।
३. हमारे यहां भोजन में कीटाणुओं द्वारा छूत लगने का खतरा हमेशा बना रहता है। इसलिए माताओं को ऊपर का दूध अथवा अन्य चीजें देने की सलाह देने से पहले अधिकतर घरों तथा आस-पास के वातावरण का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

दूध का चुनाव

गाय का दूध—यदि गाय का ताजा दूध उपलब्ध हो सके, तो यह आमतौर पर डिब्बे के दूध से सस्ता पड़ता है। इसे

हमेशा उबालकर ही देना चाहिए, जिससे उसमें मौजूद कीटाणुओं का नाश हो सके। इसके अलावा उबालने से दूध में रहनेवाला प्रोटीन भी बच्चे के पेट को ज्यादा माफिक हो जाता है। बच्चे को देने के लिए गाय के दूध को पानी मिलाकर पतला करना भी आवश्यक है। गाय की कुछ नस्लें ऐसी होती हैं, जिनके दूध में मक्खन का अंश काफी ज्यादा होता है, जिससे वह बच्चे के माफिक नहीं आता।

भैंस का दूध—इसमें गाय के दूध के मुकाबले चिकनाई की मात्रा लगभग दुगनी होती है। अतः इसे हजम करना बच्चे के लिए मुश्किल होता है। हां, कुछ बच्चे थोड़े दिनों में इसकी चिकनाई तथा प्रोटीन को पचाने लगते हैं, किंतु फिर भी परिशिष्ट में बताये तरीके से इसमें से कुछ चिकनाई निकाल लेना ही ठीक रहता है। (वैसे भी भारत के अधिकतर भागों में भैंस का दूध ही अधिक उपयोग में आता है, क्योंकि गाय का दूध मुश्किल से मिलता है)। बंबई तथा दिल्ली की कुछ दूधशालाएं भैंस का ऐसा दूध भी बेचती हैं, जिसमें से मशीन द्वारा कुछ चिकनाई निकाल ली जाती है। इस दूध का बच्चे के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, बशर्ते कि चिकनाई निकालनेवाली मशीनें साफ-सुथरी हों। भैंस के दूध की चिकनाई को पानी तथा मक्खन निकले दूध का पाउडर मिलाकर भी कम किया जा सकता है। किंतु सबसे सरल और प्रचलित नुसखा तो उसमें पानी मिलाना ही है।

बकरी का दूध—यह गाय के दूध जैसा ही अच्छा होता है और आसानी से मिल सके, तो इसे ही इस्तेमाल करना चाहिए। यही बात गधी के दूध के बारे में भी है।

डिब्बे में बंद दूध का पाउडर—इसके कई फायदे हैं। एक तो यह कि यह शुद्ध तथा साफ रहता है। दूसरे, सफर में या घर के बाहर भी आसानी से बनाया जा सकता है। इसकी कई किस्में मिलती हैं। मुख्य ये हैं :

गाय का अपरिवर्तित सुखाया हुआ दूध, जिसमें से चिकनाई बिलकुल नहीं निकाली जाती और यदि निकाली भी जाती है, तो बहुत ही कम मात्रा में। ऐसा करने से यह गरम आबहवावाले क्षेत्रों के बच्चों की पाचन-क्रिया के अनुकूल रहता है। इसे 'फुल क्रीम मिल्क' भी कहते हैं। ड्यूमैक्स, ग्लैक्सो, आस्टरमिल्क, काऊ एंड गेट (रेड लेबिल) तथा अमुल आदि इसी प्रकार के दूध हैं। जिन बच्चों को गाय का दूध देने की जरूरत हो, यह दूध दिया जा सकता है। पाउडर को डिब्बे के ऊपर लिखे तरीके से ही बनाना तथा पतला करना चाहिए। हमारे यहां अधिकतर माताएं इस दूध को लिखी हुई सूचना से भी अधिक पतला करके देती हैं, क्योंकि वे समझती हैं कि बच्चा इतना गाढ़ा दूध हजम नहीं कर पायेगा। पर यह खयाल एकदम गलत है। ऐसा करने से बच्चे को पूरी खुराक नहीं मिल पाती और वह दुबला तथा कमजोर रह जाता है। अगर बच्चे को कब्ज हो जाये, तो यह मत समझ लीजिये कि दूध के कम पतला होने के कारण बच्चा शायद उसे पचा नहीं पाया। आमतौर पर इसके कारण दूसरे ही होते हैं।

गाय का दूध, जिसमें से कुछ चिकनाई निकाल दी गई हो, जैसे 'काऊ एंड गेट' का नीले लेबिलवाला दूध। इसे 'हाफ क्रीम मिल्क' भी कहते हैं। इस प्रकार का दूध डाक्टर प्रायः उन बच्चों को बताते हैं, जिन्हें जन्म के कुछ हफ्तों बाद ही ऊपर का दूध देने की आवश्यकता पड़ जाती है। कभी-कभी कुछ समय के लिए ऐसे बच्चों के लिए भी, जिन्हें दस्त लग गये हों, इस दूध की आवश्यकता पड़ जाती है। लेकिन यह दूध लंबे समय तक नहीं दिया जाना चाहिए। इससे बच्चे को पूरा पोषण नहीं मिल पाता, क्योंकि इसमें से आधी के लगभग चिकनाई निकाल ली जाती है। क्रीम सेपरेटर की सहायता से या परिशिष्ट में दिये गये तरीके से दूध को हाफ

क्रीम बनाया जा सकता है।

चिकनाईरहित दूध (स्किम मिल्क), इसमें से चिकनाई पूर्ण रूप से निकाल ली जाती है। यह खुला भी बिकता है और डिब्बों में बंद भी। बच्चों के अतिरिक्त खाद्य के रूप में यह बड़ा उपयोगी है, किंतु जो बातें हाफ क्रीम मिल्क के लिए कही जा चुकी हैं, वे इस पर कहीं ज्यादा लागू होती हैं।

आजकल भैंस का दूध भी पाउडर के रूप में मिलने लगा है, जिसमें से इतना मक्खन निकाल लिया जाता है कि उसकी चिकनाई गाय के दूध के बराबर हो जाती है।

गाय के दूध में से प्रोटीन का कुछ अंश निकालकर तथा उसमें एक विशेष प्रकार की शक्कर मिलाकर उसे ऐसा भी बनाया जाता है, जिससे वह मां के दूध के जैसा हो जाता है। 'लेक्टोजन' तथा 'सिमिलेक' आदि इसीके उदाहरण हैं। कभी-कभी डाक्टर इसी प्रकार का दूध देने की सलाह देते हैं, लेकिन यह याद रखना चाहिए कि प्रोटीन तथा शक्कर का परिमाण मां के दूध के अनुसार होने पर भी यह दूध मां के दूध के समान ही गुणकारी नहीं हो जाता।

डिब्बाबंद तरल दूध, यह दो रूपों में उपलब्ध है—

(१) उद्वाष्पित सादा दूध, यह गाय का ही दूध होता है, जिसे सुखाकर गाढ़ा कर लेते हैं। इसे सीलबंद डिब्बों में रखा जाता है। पश्चिमी देशों में ऊपर के दूध पर रखे गये ९० प्रतिशत से अधिक बच्चों को यही दिया जाता है। इसमें चीनी तथा पानी डिब्बे पर लिखे निर्देशों के अनुसार ही मिलाये जाने चाहिएं। लेकिन डिब्बा जिस दिन खोला जाये, उसी दिन उसे खतम भी कर देना चाहिए। ज्यादा-से-ज्यादा रेफ्रीजरेटर में रखकर एक दिन और चलाया जा सकता है। हमारे देश में इस प्रकार के दूध का उपयोग उन्हीं घरों में हो सकता है, जहां रेफ्रीजरेटर हो या जहां पूरा डिब्बा उसी दिन काम में आ सके।

(२) मीठा मिलाया हुआ उद्वाष्पित दूध भारतवर्ष में काफी उपयोग में आता है, क्योंकि डिब्बा खोलने के बाद रेफ्रीजरेटर के बिना ही गरमी के दिनों में भी यह काफी दिनों तक काम में लाया जा सकता है। इसमें ऊपर से मिलाई गई शक्कर इसे खराब नहीं होने देती। इसके अलावा माताएं भी इसे बहुत पसंद करती हैं, क्योंकि एक तो खूब मीठा होने के कारण यह स्वादिष्ट होता है; दूसरे, इसके कारण बच्चा ऊपर-ऊपर मोटा-ताजा भी दिखाई देता है। लेकिन वास्तव में यह इतना अच्छा नहीं है। बच्चे के प्रकट मोटापे के नीचे इस दूध के कारण मिलनेवाले पोषण की न्यूनता छिप जाती है। इसके अलावा गरीब माता-पिता इस दूध को अधिक मात्रा में खरीद नहीं सकते और इसलिए वे इसे इतना पतला करके देते हैं कि इसमें मांस बनानेवाले अंश—प्रोटीन—की कमी हो जाती है। इसके अलावा इसमें विटामिन भी कम होते हैं, जिससे बच्चे की हड्डियां कमजोर रह जाती हैं और वह सूखा रोग तथा विटामिन 'ए' की कमी से आंख की बीमारियों का शिकार हो सकता है। फिर भी यदि अन्य प्रकार का दूध या प्रोटीन बनानेवाले खाद्य न मिल सकें, तो सफर आदि में कुछ समय के लिए इस दूध का उपयोग किया जा सकता है। इसे देने का परिमाण एक औंस पानी में एक छोटा चम्मच दूध के हिसाब से है।

अम्लीय दुग्ध खाद्य—ये कई विशेष परिस्थितियों में, जैसे बच्चों को दस्त लगने अथवा आंव गिरने तथा पेट की दूसरी छूत की बीमारियों में, दिये जा सकते हैं। घर में जमाया हुआ दही या उसका मट्ठा भारत में चलता है। किंतु यह खट्टा नहीं होना चाहिए। हमारे यहां प्रचलित यह धारणा कि दही या मट्ठे से बच्चों को सरदी लग जाती है, गलत है। बल्कि अपने देश में तो दूध की अपेक्षा दही ज्यादा समय तक बिना खराब हुए रखा जा सकता है। इस कारण शिशुओं के सामान्य

खाद्य के रूप में दही या मट्ठे का उपयोग किया ही जा सकता है।

अन्नयुक्त (माल्टेड) खाद्य—इनमें गाय के दूध-पाउडर में से कुछ चिकनाई निकालकर अंशतः पूर्व पाचित गेहूं तथा जौ मिला दिये जाते हैं। भारत में आमतौर पर प्रचलित दो अन्नयुक्त दुग्ध खाद्य 'हारलिक्स' तथा 'नेसेल्स' हैं, जिनका विशेष परिस्थितियों में डाक्टर की राय से इस्तेमाल किया जा सकता है।

बच्चे के लिए काफी तथा चाय निश्चित रूप से हानिकारक हैं और बच्चों को कभी नहीं दी जानी चाहिए। एक तो इनमें पोषक तत्वों की कमी रहती है, और दूसरे, इनसे बच्चों की भूख भी मरती है। इन पर खर्च करने की अपेक्षा गरीब माताएं उस पैसे का उपयोग बच्चे के लिए दूध, और नहीं तो कम-से-कम मक्खन निकला दूध खरीदने में कर सकती हैं।

बच्चों के लिए गाय अथवा भैंस का दूध तैयार करना

दूध के कीटाणुओं को मारने तथा उसे अधिक पाचक बनाने के लिए उसे उबालना आवश्यक है। बिना उबला दूध पेट में जाकर दही जैसा जम जाता है, जिसके कारण वह आसानी से हज़म नहीं हो पाता। खटाई (साइट्रेट) अथवा उबला हुआ अन्न का पानी (जैसे, चावल का माड़ या कांजी) भी दूध को हलका बना सकते हैं, किंतु इससे कीटाणु नष्ट नहीं होते। दूध को पतला करना भी आवश्यक है। पश्चिमी देशों में बच्चों को भारत की अपेक्षा दूध में कम पानी मिलाकर दिया जाता है। वहां के बच्चों के अधिक मजबूत होने का यह भी एक कारण है। भारत की गरम जलवायु का ध्यान रखा जाये, तब भी एक महीने तक के बच्चों के लिए एक भाग गाय के दूध में दो भाग से अधिक पानी नहीं मिलाया जाना चाहिए। बच्चे के तीन महीने का होने तक पानी और दूध बराबर

मात्रा में मिलाकर देना चाहिए। इसके बाद दूध की मात्रा अधिक और पानी की मात्रा कम (२:१) करना ठीक रहेगा।

बच्चे के ९ महीने का हो जाने के बाद दूध तीन भाग और पानी एक भाग तथा एक साल के बाद बिना पानी मिलाया गाय का दूध देना चाहिए। भैंस के दूध की चिकनाई अगर हलकी नहीं की गई है, या उसमें से कुछ मक्खन नहीं निकाल लिया गया है, तो उसमें पानी थोड़ा अधिक मिलाना चाहिए, खासतौर पर उस समय, जबकि बच्चे को पीले दस्त हो रहे हों। ये सारे निर्देश साधारणत: औसत बच्चों के लिए ही हैं। कुछ बच्चे अधिक पौष्टिक तथा चिकनाईयुक्त दूध पर भी फूलते-फलते हैं। बच्चे को कुछ कब्ज हो जाने पर बहुत-सी माताएं यह समझने लगती हैं कि बच्चे को दूध नहीं पच रहा है और वे उसे अधिक पतला दूध देने लगती हैं। इसके कारण बच्चा दुबला और कमजोर हो जाता है। दूध में थोड़ी-सी शक्कर की मात्रा अधिक कर देने से इस तरह का कब्ज साधारणत: चला जाता है। बच्चे को यदि पीले दस्त होते हों, तो उसे अधिक पतला दूध देने की बजाय उसमें से चिकनाई की मात्रा कुछ कम कर देनी चाहिए।

दूध में शक्कर मिलाना भी आवश्यक है। एक तो इसलिए कि मां के दूध की अपेक्षा गाय के दूध में वैसे ही शक्कर कम होती है। दूसरे, उसमें पानी मिलाने से शक्कर और कम होती जाती है। शक्कर सिर्फ दूध को मीठा करने के लिए ही नहीं मिलाई जाती—दूध में शक्कर यदि अधिक हो जाये, तो बच्चे को दस्त लगने की संभावना रहती है; और इसके विपरीत यदि शक्कर की मात्रा बहुत कम हो, तो बच्चे के वजन में समुचित वृद्धि नहीं होती। हमारे यहां एक और गलत धारणा प्रचलित है कि शक्कर की जगह ग्लूकोज़ देना अधिक अच्छा रहता है। वस्तुत: ग्लूकोज़ देने का इसके अलावा कोई फायदा नहीं है कि यह मुहरबंद डिब्बों में

मिलता है और हाथ से छुआ नहीं जाता, जिससे इसमें कीटाणुओं द्वारा छूत लगने का खतरा नहीं रहता (बाजार में मिलनेवाली शक्कर या खांड में यह खतरा रहता है)।

कभी-कभी शक्कर से बच्चों के पेट में वायु भी बन जाती है, जिससे बच्चा थोड़ा बेचैन हो जाता है। ऐसी हालत में बच्चे को डेक्सट्रीमाल्टोज़ या डेक्सट्रीन नामक चीनी देनी चाहिए। यह दवाफरोशों के यहां मुहरबंद डिब्बों में मिलती है। यह उन बच्चों को भी फायदा पहुंचाती है, जिन्हें कुछ कड़े दस्त होते हैं। भारत के कुछ भागों में, खासतौर पर दक्षिण भारत में, नीरा से बनाई गई ताड़-चीनी बच्चों को दी जाती है। एक तो इससे पेट में वायु भी कम बनती है और दूसरे, इसमें थोड़ी मात्रा में कुछ विटामिन भी रहते हैं। बच्चे को शक्कर कितनी देनी चाहिए, इस संबंध में यही कहा जा सकता है कि आमतौर पर दो महीने के बच्चे को, जिसे सिर्फ गाय का दूध ही पिलाया जाता हो, प्रति दिन कोई ६ चाय के चम्मच साधारण शक्कर अथवा १० चाय के चम्मच डेक्सट्रीमाल्टोज़ की आवश्यकता रहती है। डेक्सट्रीमाल्टोज़ साधारण शक्कर से कुछ कम मीठी होती है, इसलिए यह अधिक मात्रा में दी जानी चाहिए। इतनी शक्कर दिन भर में छः बार के दूध में बराबर बांटकर देनी चाहिए। चाय के चम्मच को उसके किनारों तक ही भरना चाहिए, अधिक नहीं।
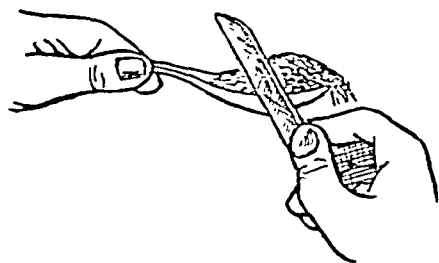
चित्र २०—चाय का चम्मच भरना—भरकर चाकू से किनारे के समतल कर लीजिये

जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता जाता है, शक्कर की मात्रा भी बढ़ाकर

चाय के ६ चम्मच तक की जा सकती है। हर बार के खाने में दिये जानेवाले दूध और पानी की कुल मात्रा भी बदलती जाती है। १ महीने के बच्चे को हर बार दिये जानेवाले पानी तथा दूध की कुल मात्रा ३-४ औंस तक रहती है, जो बढ़ते-बढ़ते ४ महीने के बच्चे के लिए ५ से ५॥ औंस तथा ६ महीने के बच्चे के लिए ८ औंस तक हो जाती है। किंतु सभी बच्चों पर यह बात एक ही तरह से लागू नहीं होती और यह बच्चे की भूख तथा उसके पेट की क्षमता पर भी निर्भर करती है।

दूध तथा पानी का सही-सही नाप करने के लिए ४ या ८ औंस का नपना गिलास (मेजरिंग जार) खरीद लेना चाहिए (यह तामचीनी का अच्छा रहेगा, क्योंकि वह टूटता नहीं और उसे उबालकर विकीटाणुकृत किया जा सकता है), या फिर बच्चे के दूध पिलाने के बर्तन को औंस-गिलास से नाप लेना चाहिए (चित्र ३३-३४)। चाय के चम्मच अलग-अलग माप के होते हैं। इसलिए या तो प्रामाणिक चाय का चम्मच खरीदना चाहिए, या किसी दवाफरोश की दूकान से एक औंस शक्कर तुलवाकर यह देख लेना चाहिए कि इससे आपका चाय का चम्मच कितनी बार समतल अथवा 'ढेर-भरकर' भरता है। चाय के ठीक चम्मच से नापने पर १ औंस चीनी आठ बार में भरी जानी चाहिए।

डिब्बे से दूध का पाउडर या शक्कर निकालने के लिए साफ चाय के चम्मच को उसमें डालकर निकालने के बाद ढेर को चाकू से या डिब्बे के किनारों से ही चम्मच की कोर के समतल कर लेना चाहिए। (चित्र २०)।

आमतौर पर 'ढेर भरे' हुए चाय के चम्मच से कोई दो समतल चाय के चम्मच भरे जा सकते हैं। लेकिन इसकी जांच कर लेनी चाहिए।

मां का दूध पीनेवाले बच्चों की अपेक्षा ऊपर का दूध

पीनेवाले बच्चों को अतिरिक्त विटामिनों की और भी अधिक आवश्यकता पड़ती है।

दूध पिलाने के बर्तन

१. कटोरी के आकार का एक छोटा-सा बर्तन, जिसमें एक ओर बच्चे के मुंह में दूध अथवा दवा वगैरा देने के लिए चोंच की तरह नोक निकली रहती है। यह दक्षिण भारत में अधिक प्रचलित है। इसे तमिल भाषा में 'पलदाई' कहते हैं।

चित्र २१—पलदाई

२. तुतई या घंटी, जिसमें एक नली निकली रहती है, जिस पर रबड़ की निपल (चूचुक) लगाई जा सकती है। इसका उत्तर भारत में अधिक प्रयोग होता है।

चित्र २२—तुतई

३. दवा की साधारण ८ औंस-वाली बोतल, जिसे रबड़ की चूचुक लगाकर प्रयोग में लाया जाता है।
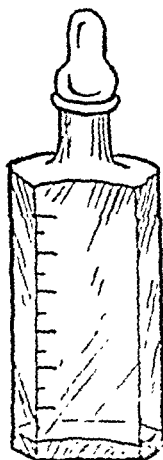
चित्र २३—दवा की बोतल

४. कांच की नौकाकार बोतल, जो दोनों सिरों पर खुली रहती है। इसके एक सिरे पर डाट तथा दूसरे सिरे पर चूचुक लगाकर काम में लाया जाता है (चित्र २४)।

५. चौड़े मुंह तथा चपटे पेंदे की करीब-करीब शंकु के आकार की बोतल। इसके मुंह पर रबड़ की चूचुक लगाकर काम में लाया जाता है। ये बोतलें अब भारत में भी बनने लगी हैं। ये आसानी से साफ की जा सकती हैं। किसी भी प्रकार के कोने न

होने के कारण इनमें दूध अथवा अन्य प्रकार की गंदगी जमने का खतरा नहीं रहता।

नीचे इन सभी बर्तनों के गुणों तथा अवगुणों पर विचार करके उन पर राय दी गई है।

चित्र २४—नौकाकार बोतल
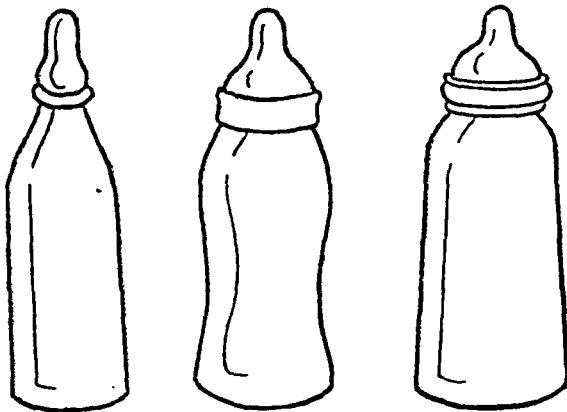
चित्र २५, २६, २७—शंकु के आकार की बोतलें

बर्तन	लाभ और हानि	सम्मति
पलदाई	सस्ता, धातु का होने के कारण टिकाऊ, उबालकर साफ तथा विकीटाणुकृत किया जा सकता है। किंतु इससे बच्चे को चूसने का आनंद नहीं प्राप्त हो सकता। दूध आदि के गलत जगह (जैसे नाक, अथवा सांस की नली) में जाने खतरा भी रहता है।	इसका प्रयोग केवल दवा वगैरा देने अथवा कभी-कभी अतिरिक्त आहार देने के लिए ही किया जा सकता है।

दवा की बोतल	दूध पिलाने की अन्य बोतलों से सस्ती, कितु पूरी तरह साफ नहीं हो पाती— खासतौर पर गर्दन तथा कोने।	प्रयोग में नहीं लाना चाहिए।
तुतई	धातु की बनी रहने के कारण टूटती नहीं, कितु इसकी नली ठीक तरह से साफ नहीं की जा सकती, जिससे उसमें खतरनाक जीवाणुओं का निवास हो सकता है।	प्रयोग में नहीं लाना चाहिए।
नौकाकार बोतल	अपेक्षाकृत सस्ती, आसानी से साफ की जा सकती है। डाट को हटाकर दूध का प्रवाह नियंत्रित किया जा सकता है। कितु सीधी नहीं खड़ी की जा सकती, इसलिए बोतल में भरने के पहले दूध या अन्य खाद्य को जीवाणु-रहित करना आवश्यक है।	सिर्फ कांच की बनी ही इस्तेमाल करनी चाहिए, धातु की बनी में दूध पिलाने-वाले को दूध के खतम हो जाने का पता नहीं पड़ पाता।
शंकु के आकार की बोतल	आसानी से तथा अच्छी तरह साफ की जा सकती है। दूध आदि द्रवों को बोतल में भरने के पहले अथवा बाद में भी विकीटाणुकृत किया जा सकता है। आसानी से प्रयोग में लाई जा सकती है। पेंदा चपटा होने के कारण खड़ी भी की जा सकती है। कितु इसकी कीमत दूसरी बोतलों की अपेक्षा थोड़ी अधिक होती है। इसके साथ मिलने-वाला शीशे का गिलास भी बड़े काम का होता है, क्योंकि इसमें बोतल पर लगने-वाली रबड़ की चूचुक को आवश्यकता पड़ने पर ढककर रखा जा सकता है।	प्रयोग में लाई जा सकती है।

अधिक ताप सह सकनेवाले कांच की और उबाले जा सकनेवाले प्लास्टिक की बोतलें मंहगी तो होती हैं, पर वे टिकाऊ होती हैं और अंत में सस्ती ही पड़ती हैं। बोतलें ऐसी खरीदनी चाहिएं, जो ब्रुश से आसानी से साफ हो सकें। बोतल की गर्दन और तला सपाट होना चाहिए। उसमें कोने ज्यादा हों, तो सफाई में दिक्कत आती है। खरीदते समय कम-से-कम चार बोतलें तथा काफी संख्या में चूचुक एक साथ ले लेने चाहिएं, जिससे एक साथ दो बोतलों में तैयार दूध रखा जा सके, एक को संतरे का रस देने के लिए रखा जा सके और एकाध बोतल फालतू रखी रहे, ताकि कभी टूट जाने पर बाजार न भागना पड़े। चूचुकों की परीक्षा कर लेनी चाहिए। इसके लिए एक-एक को बारी-बारी से पानी-भरी बोतल पर लगाइये और बोतल को उलटकर देखिये। पानी उसमें से बंधी धार से निकलना चाहिए। यह ध्यान में रखना चाहिए कि पानी दूध की अपेक्षा अधिक तेजी से बाहर निकलता है। यदि आवश्यक हो, तो चूचुक में एक-दो छेद और किये जा सकते हैं (चित्र ४०)। इसके लिए सूई की नोंक को आंच के ऊपर रखकर एकदम लाल कर लेना चाहिए और फिर उसे चूचुक में चुभोकर छेद करना चाहिए। सूई की नोक को दियासलाई की तीली जलाकर भी लाल किया जा सकता है।

दूध पिलाने के सामान की सफाई

१. बोतल, चूचुक, चम्मच, चूचुक के ढक्कन तथा फलों का रस निकालने के बर्तनों को अच्छी तरह पानी में भिगोइये।

चित्र २८—बोतल को पानी में डुबाकर उबालिये

चित्र २९—चूचुकों और डाटों को दूसरे बर्तन में उबालिये

२. इसके बाद उन्हें साबुन मिले या बर्तन साफ करने
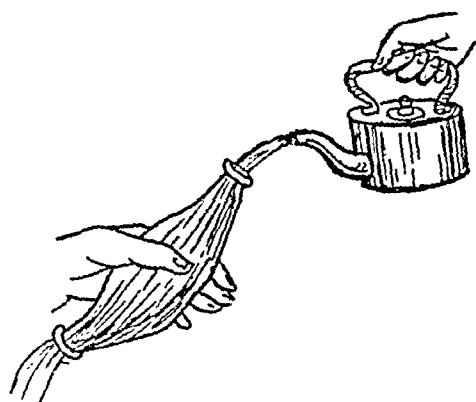
चित्र ३०—बर्तनों को अगर उबाला न जा सके, तो कम-से-कम उबलते पानी से धो लेना चाहिए

का पाउडर मिले गरम पानी के साथ ब्रुश से साफ कीजिये। इससे बर्तनों की चिकनाई दूर हो जाती है।

३. अंत में साफ गरम पानी से धो लीजिये। चूचुकों को दबाकर उनके छेद में से भी थोड़ा पानी निकालना चाहिए।

यदि ये सारी बातें हर बार बच्चे को आहार देने के बाद एक साथ न की जा सकें, तो कम-से-कम बर्तनों को पानी से अच्छी तरह साफ करके एक बड़े बर्तन में पानी भरकर उन्हें उसमें डुबाकर रख देना चाहिए, ताकि समय मिलने पर उनकी पूरी सफाई की जा सके। अन्यथा बाद में सफाई करते समय बोतलों के अंदर दूध का जो थोड़ा-सा भाग बच जाता है, वह सूखकर चिपक जाता है और बड़ी मुश्किल से साफ हो पाता है और उसमें समय भी काफी लगता है।

बच्चे के लिए दूध बनाना

अपने यहां आम रिवाज यह है कि बच्चे को दिया जाने-वाला दूध उसे देने के समय ही तैयार किया जाता है, जबकि पश्चिमी देशों में यह दिन भर के लिए एक बार ही बनाकर ४-५ बोतलों में भरकर रख लिया जाता है, क्योंकि उनके यहां अधिकांश घरों में रेफ्रीजरेटर होते हैं। जब दूध पिलाने का वक्त आता है, तो रेफ्रीजरेटर से एक बोतल निकाली और उसे गरम करके बच्चे को

दे देते हैं। इससे बार-बार दूध बनाने तथा उसे विकीटाणुकृत करने की तकलीफ बच जाती है। किंतु आज की हालतों में मध्यम श्रेणी के सामान्य भारतीय परिवार में रेफ्रीजरेटर का होना असंभव है, और वैसे रखा हुआ दूध गरमी के दिनों में ४-६ घंटों में खराब हो जाता है। एक बार में दो या तीन पारी से अधिक के लिए दूध (चाहे डिब्बाबंद हो, चाहे ताजा) नहीं बनाना चाहिए। किंतु इतने घंटों तक रखने के लिए भी दूध नीचे लिखे निर्देशों के अनुसार ही बनाना चाहिए और साथ ही दूध की बोतलों को पूरी तरह विकीटाणुकृत करके ही इस्तेमाल करना चाहिए। यदि हर बार ही नया दूध भी बनाया जाये, तो भी साधारण सफाई के अतिरिक्त दूध तथा बोतलों को, चूचुकों को, तथा दूध बनाने के दूसरे बर्तनों को भी विकीटाणुकृत करना आवश्यक है। दूध बनाने के तरीके ये हैं :

आवश्यक मात्रा में ताजा दूध अथवा डिब्बे का पाउडर-वाला दूध, पानी तथा चीनी (नपने गिलास या ऐसे बर्तन से जिसका नाप आपको पता हो, नापकर) लेकर एक बड़े बर्तन या मिश्रक में डालकर उन्हें भली भांति मिलाइये। इसके लिए चाहें, तो बाजार से २४ औंस का धातु का बना मिश्रक खरीद सकते हैं। धातु का बना होने के कारण यह टूटता नहीं और इस तरह सस्ता ही पड़ता है।
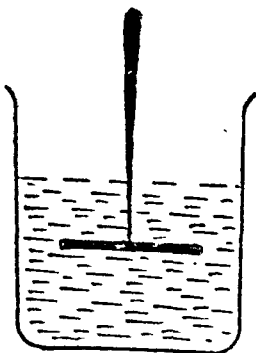
चित्र ३१—मिश्रक
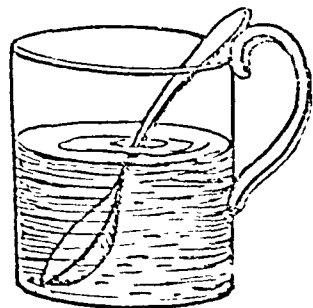
चित्र ३२—मिश्रक की जगह काम में लाया जानेवाला बर्तन
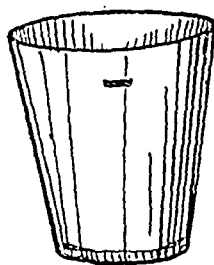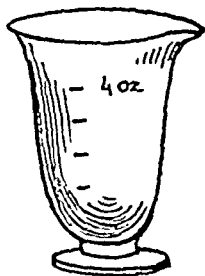
चित्र ३३—नपना गिलास

चित्र ३४—नाप दिखाने के लिए निशान लगा गिलास

दूध कई बार बनाया जाये या हर बार पिलाने से पहले, इसका निर्णय आदत, रीति अथवा कई-कई बोतलें तथा चूचुकों आदि के एक साथ खरीद सकने न सकने की क्षमता आदि कई बातों पर निर्भर करता है और इसके अलावा इसका आखिरी फैसला मां के ऊपर ही छोड़ देना चाहिए। एक बोतल को भी कीटाणुरहित करने की प्रक्रिया यही रहेगी कि उसे एक बर्तन में इतना पानी भरकर कि बोतल आधी डूबी रहे, कोई २० मिनट तक आग पर रखकर उबालना चाहिए। बच्चे को दिन में ६ बार आहार देते समय हर बार की झंझट से बचने के लिए २-३ बोतलों को एक साथ इसी तरकीब से विकीटाणुकृत करना ज्यादा ठीक रहता है। खाद्य पदार्थों तथा बर्तनों को विकीटाणुकृत करके उपयोग में लाने की बात शायद भारतीय माताएं एकदम न अपना पायेंगी और विज्ञान की इस सीख को भारतीय घरों में प्रवेश पाने में शायद अभी काफी समय लगेगा। अत: एक विकल्प के तौर पर हम इस तरीके का सुझाव देते हैं। उबलते हुए पानी से बर्तन को धोकर उसमें चीनी ले लीजिये। चीनी पर आवश्यक मात्रा में उबलता हुआ पानी डाल दीजिये और फिर उसमें पहले से उबला दूध या डिब्बे का तैयार किया हुआ दूध मिला दीजिये। उबलता पानी किसी हद तक शक्कर आदि
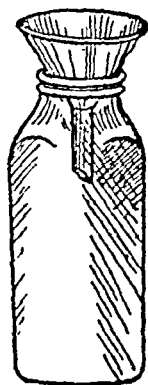
चित्र ३५—कीप लगाकर बोतल भरने का तरीका

चीजों को विकीटाणुकृत कर देगा। इसके बाद इसे साफ की हुई दूध पिलाने की बोतल (जिसे उबालकर या मिल्टन के घोल में रखकर विकीटाणुकृत कर लिया गया है) में भर लीजिये। इसका तरीका यह है :

चित्र ३६—कई बोतलों को एक साथ विकीटाणुकृत करना
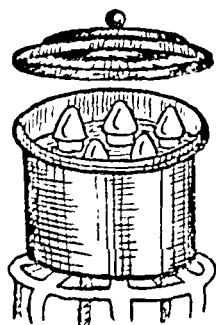
साफ बर्तन को उबलते हुए पानी से धो लीजिये। अब इसमें आवश्यक मात्रा में शक्कर तथा दूध का पाउडर डाल दीजिये। इस पर उबलता हुआ पानी डालकर अच्छी तरह मिलाइये। उसके बाद फिर आवश्यक मात्रा में उबलता हुआ कुछ पानी और डाल दीजिये। कुछ देर ढंका रखिये और फिर इसमें आवश्यक मात्रा में दूध मिला दीजिये।

अब साफ की हुई दूध पिलाने की बोतल को भर लीजिये। बोतलों तथा चूचुकों को विकीटाणुकृत करने के लिए अगर उबालने के बजाय मिल्टन का घोल इस्तेमाल किया जा रहा है, तो ४ पिंट पानी में एक औंस घोल मिलाना चाहिए। बोतलें (धातु की नहीं, वे काली पड़ जाती हैं) तथा चूचुकें कई घंटे तक इसमें पड़ी रहने दी जानी चाहिएं और उपयोग में लाने के पहले उबाले हुए पानी से अच्छी तरह धो लेनी चाहिएं। यह अच्छा होगा कि दूध तैयार करते तथा बोतलों में भरते समय सब बर्तन (चूचुक, बोतलें, गिलास आदि) एक ट्रे में रख लिये जायें, ताकि नीचे गिरे दूध को धोया जा सके और वहां मक्खियां न बैठें।

बोतल से दूध पिलाने के लिए सुझाव—बोतल से दूध पिलाते समय मां को चाहिए कि वह बच्चे को बड़े आराम से तथा धीरे-धीरे दूध पिलाये। बीच में किसी प्रकार का

चित्र ३७—बोतल पकड़ने का सही तरीका

व्याघात-व्यवधान नहीं उत्पन्न होना चाहिए और न ही यह काम व्यग्रतापूर्वक या जल्दी-जल्दी करना चाहिए। दूध पिलाने के पहले देख लेना चाहिए कि वह कितना गरम है। इसके लिए थोड़ा-सा दूध अपनी हथेली के पीछे लगाकर देख लीजिये। न तो वह अधिक गरम होना चाहिए और न ही एकदम ठंडा। चूचुक को कभी भी हाथ से नहीं छूना चाहिए, क्योंकि दूध पीते समय यह बच्चे के मुंह में जाता है। बोतल का पिछला हिस्सा हमेशा इतना उठा रहना चाहिए कि चूचुक हमेशा दूध से भरा रहे, अन्यथा दूध के साथ थोड़ी-बहुत हवा भी बच्चे के पेट में चली जायेगी।

बच्चे को एक बोतल का दूध पीने में साधारणतः कोई २० मिनट लगते हैं। चूचुक का छेद इतना बड़ा नहीं होना चाहिए कि बच्चा १५ मिनट से पहले ही दूध खतम कर दे। यदि बच्चे को २० मिनट से अधिक समय लगता है (बीच में किसी प्रकार का व्याघात उत्पन्न हुए बिना), तो चूचुक के छेदों को बड़ा करने की आवश्यकता है। (चित्र ३९)। बोतल के नीचे की डाट खोलकर या चूचुक को थोड़ा हटाकर कुछ हवा बोतल में जाने दी जाये, तो भी दूध का प्रवाह बढ़ाया जा सकता है।

छोटे बच्चे को कुछ बड़े तथा तंदुरुस्त बच्चे की अपेक्षा चूचुक में ज्यादा बड़े छेदों की जरूरत होती है। चूचुक पुराना हो जाने पर चूसते समय पिचक जाता है,

जिससे बच्चे को दूध नहीं मिल पाता। तब चूचुक बदल देना चाहिए। एक समय बच्चे को कितना दूध पिलाया जाये, इसके लिए सबसे अधिक भरोसा तो उसकी तृप्ति पर ही करना चाहिए। उसे जबरदस्ती दूध कभी नहीं पिलाना चाहिए। किंतु बहुत छोटे बच्चे दूध पीते-पीते कुछ क्षणों में सो जाते हैं। उन्हें पीठ पर थपथपा दिया जाये, तो वे जागकर पुनः दूध पीने लगते हैं। एक बार का बचा हुआ दूध दूसरी बार पिलाने के काम में कभी नहीं लाना चाहिए। अक्सर माताएं बोतल बच्चों के मुंह में देकर घर के काम-काज में लग जाती हैं। यह ठीक नहीं है। याद रखिये कि बच्चे को बोतल से दूध पिलाते समय भी उसके पास आपका रहना आवश्यक है, क्योंकि आप अपने बच्चे को उनका भोजन ही नहीं, बल्कि अपना सहवास भी दे रही हैं।

चित्र ३८—बोतल पकड़ने का गलत तरीका
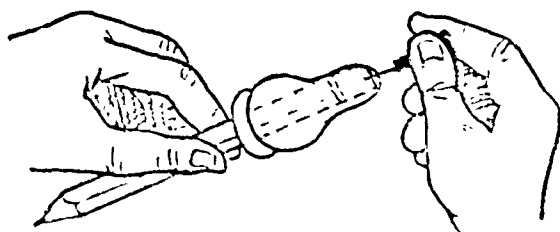
चित्र ३९—चूचुक को पेन्सिल पर रखकर गरम सूई से उसका छेद बड़ा करना

छूत के खतरे कम करने के लिए कुछ सुझाव

दूध पिलाने का बर्तन अगर तुतई (दूसरी बोतल न ली जा सके, तो) ही है, तो उससे दूध पिलाने में जो छूत लगने का खतरा रहता है, उसे नली को हर बार दूध पिलाने के बाद फाउंटेनपेन साफ करने के बारीक ब्रुश या कूंची से साफ करके तथा नली को भीतर से कई बार पानी की धार से धोकर कुछ कम किया जा सकता है। चूचुक को बांधने के लिए धागे का या तो प्रयोग ही नहीं करना चाहिए, और यदि किया ही जाये, तो हर बार नया धागा ही बांधना चाहिए, क्योंकि यह खतरनाक कीटाणुओं को आश्रय देता है। यदि कांच की साधारण बोतल काम में ली जाये, तो वह ऐसी होनी चाहिए, जिसका मुंह जरा चौड़ा हो तथा जिसके किनारे, गर्दन और पेंदी गोल हों। उसमें कोने नहीं होने चाहिएं। ऐसी बोतल अधिक आसानी से साफ की जा सकती है।

बच्चों को दूध पिलाते समय चूचुक को किसी गंदे कपड़े अथवा साड़ी के छोर से भी नहीं पोंछना चाहिए। बेहतर तो यही है कि उसे हाथ से छुआ ही न जाये। अगर वह गिर जाये या जमीन से छू जाये, तो उसे उबलते हुए पानी से अच्छी तरह धोकर ही काम में लाना चाहिए।

: ४ :

तरल तथा ठोस खाद्यों की शुरूआत

शिशु-अवस्था में ही देर-अबेर से बच्चे को स्टार्चयुक्त भोजन देना शुरू करना आवश्यक है। गेहूं, साबूदाना, चावल, बाजरा, मक्का, वगैरा जैसे अन्नों से बच्चों को लोहा, चूना, फासफोरस, आदि खनिज मिलते हैं और ये बढ़ते हुए शिशुओं को अतिरिक्त पोषण प्रदान करते हैं, जो दूध से मिलनेवाले पोषण के अलावा होता है। इसके अलावा बच्चे को इन वस्तुओं का अभ्यस्त हो जाना आवश्यक भी है, क्योंकि आगे चलकर उसे इन्हीं सब पदार्थों को भोज्य पदार्थों के रूप में ग्रहण करना पड़ेगा। अन्न के रूप में इन पूरक खाद्यों से एक लाभ यह भी है कि बच्चे को इनसे अतिरिक्त शक्ति मिलती है, विशेष रूप से तब, जबकि २५ औंस दूध भी पर्याप्त पोषण नहीं दे सकता। ऐसी स्थिति में पोषण में और वृद्धि स्टार्च-युक्त खाद्यों से ही हो सकती है। दूसरे, लोहा जैसे खनिज, जो दूध में अपर्याप्त मात्रा में रहते हैं, अन्नों द्वारा प्राप्त हो जाते हैं। तीसरा लाभ यह भी है कि बच्चा शिशु-अवस्था में ही इन सब वस्तुओं को लेने का आदी हो जाता है, नहीं तो इन वस्तुओं की आदत डालना उस समय बहुत ही मुश्किल हो जाता है, जब शिशु में रुचि और अरुचि का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। चौथे, बच्चे में स्वाधीन इच्छा शक्ति के पैदा होने के पूर्व ही उसे इसके द्वारा बोतल के स्थान पर कटोरी-चम्मच से खाना लेने की आदत डाली जा सकती है, नहीं तो आगे चलकर इस प्रकार खिलाना मुश्किल हो जाता

है। आखिर में यह भी बताया जा सकता है कि बच्चे की खुराक में जल्दी ही इस प्रकार के कुछ खाद्य को बढ़ा देने का एक लाभ यह भी रहता है कि वह उसे कब्ज से बचाता है—खासतौर पर उबली हुई सब्जियां तो बहुत ही गुणकारी हैं। हां, एक बात ध्यान देने योग्य है कि अगर घर की परिस्थिति ऐसी नहीं है कि बच्चे का अन्नयुक्त भोजन कीटाणुरहित किया जा सके, तो उसे इस प्रकार का भोजन देना उस समय तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए कि जबतक बच्चा ६ से ९ माह का नहीं हो जाता, क्योंकि इस उम्र में बच्चों को छूत के कारण दस्त लगने का भय अपेक्षाकृत कम रहता है।

भारत तथा उसके पड़ौसी देशों में बच्चों को खिलाने-पिलाने के तरीके भिन्न-भिन्न हैं। यहांतक कि एक ही स्थान पर भी विभिन्न तरीके देखे जाते हैं। एक आम चलन यह है कि बच्चा जब एक वर्ष का हो जाता है, तो घर में जो कुछ भी पकता है, उसीमें से थोड़ा हलका तथा मुलायम स्टार्चयुक्त भोजन बच्चे को दे दिया जाता है, जैसे, रोटी, दाल अथवा सब्जी के रसे में मिला हुआ चावल। केरल में शिशुओं को बहुत थोड़ी उम्र में ही केले का चूर्ण देने का चलन है। कोंकणतटीय क्षेत्र में गेहूं के साथ मिलाकर अन्न-युक्त रागी (जिसका वर्णन परिशिष्ट में किया गया है); दक्षिण के निर्धन परिवारों में तपिओका, चोलम और कंबु वगैरा; महाराष्ट्र तथा गुजरात में बाजरा आदि अन्नों और दालों का प्रयोग किया जाता है। खुराक से, और खासकर बच्चों की खुराक से संबंधित पूर्वाग्रह दुनिया भर में बहुत दृढ़ हैं और इन्हें तर्क या वैज्ञानिक दलीलों से बदलना बहुत मुश्किल है। फिर भी यह ठीक ही रहेगा कि पश्चिमी देशों और भारत के भिन्न-भिन्न भागों में प्रचलित इन रीति-रिवाजों का अध्ययन किया जाये और उन्हें वैज्ञानिक कसौटी पर कसा जाये।

यह याद रखने की बात है कि पश्चिमी देशों में शिशु-आहार के जो तरीके आज प्रचलित हैं, वे गत ३०-४० वर्षों में अर्जित वैज्ञानिक जानकारी के प्रभावस्वरूप ही पैदा हुए हैं। पिछली शताब्दी के अंत तक भी फ्रांस तथा जर्मनी जैसे देशों में बच्चे का दूध छुड़ाने के लिए पानी में भीगी डबल रोटी को ही मुख्य या एकमात्र आहार की तरह देने का रिवाज था। उस समय वहां भी दस्त लगने के कारण शिशु-मृत्युओं की संख्या उतनी ही अधिक थी, जितनी इस समय भारतवर्ष में है। इस बात का श्रेय वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित शिशु-पोषण के तरीकों को, और वहां की सफाई-व्यवस्था तथा रहन-सहन की हालतों में सुधार को है कि अब पश्चिमी देशों के बच्चे मोटे-ताजे और तंदुरुस्त होते हैं और उन्हें अतिसार या अन्य आंत्रिक विकार नहीं होते।

कोई कारण नहीं कि हम भारत में भी उसी वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग करके बच्चों को स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट न बनायें। जिस तरह हमने अपने दैनिक रहन-सहन में बिजली, टेलीफोन और अन्य मशीनों आदि के रूप में वैज्ञानिक उपलब्धियों का लाभ उठाना प्रारंभ कर दिया है, उसी तरह हम इन नये तरीकों को भी उपयोग में ला सकते हैं। इसी उद्देश्य से नीचे शिशु-पोषण के कुछ तरीकों का परीक्षण तथा विवेचन किया जा रहा है।

स्तन-पान छुड़ाना

भारत में अधिकतर माताएं अपने बच्चों को तबतक स्तन-पान कराती रहती हैं कि जबतक उनके खयाल में स्तनों में जरा भी दूध उतरता रहता है। स्तन-पान आमतौर पर पहले साल से बहुत आगे—दूसरे साल के काफी भाग तक चलता रहता है। पश्चिमी देशों में स्तन-पान सामान्यतः नवें महीने तक बंद करा दिया जाता है और बच्चे को पूरी

तरह पर कृत्रिम आहार पर ले आते हैं। पर वहां की परिस्थिति ही कुछ और है। वहां सभी शिशुओं को शुद्ध दूध आसानी से प्राप्य है और सभी वर्गों के लिए यह संभव है कि वे अपनी बिसात के भीतर रहकर बच्चे के लिए तैयारशुदा अन्न तथा वनस्पति आहार खरीद सकें।

इसके दृष्टिगत स्तन-पान छुड़ाने के बारे में भारतीय माताओं को हमारी सलाह यह है कि स्तन-पान बच्चों के नौ महीने या एक साल का होते-होते तभी बंद करायें कि जब वे उनके लिए शुद्ध दूध, अंडे तथा प्रोटीनों से परिपूर्ण अन्य आवश्यक खाद्य प्राप्त करने की स्थिति में हों। ऐसे पदार्थों को देते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि ये सब-के-सब ताजे बनाये जायें तथा इस बात की सावधानी रखी जाये कि सभी खाद्य कीटाणुमुक्त हों। ऐसा करने के लिए इनको उबाल लेना चाहिए और इन्हें विकीटाणुकृत बर्तनों में ही रखना चाहिए। जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है और जहां माताएं इस योग्य हैं कि उपर्युक्त विधियों का ठीक तरह पालन कर सकें, वहां पूरक खाद्य पदार्थों का उपयोग काफी पहले—शिशु के चार महीने का हो जाने पर—ही आरंभ किया जा सकता है। अन्यथा उचित यही होगा कि शिशु के ६ माह का हो जाने तक इसे स्थगित रखा जाये (अगर मां का दूध प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो, तो)। ऐसे परिवारों में, जहां बच्चे के लिए गाय-भैंस का शुद्ध दूध समुचित मात्रा में उपलब्ध न हो, यह आवश्यक हो सकता है कि मां का दूध जबतक हो सके, जारी रखा जाये और उसके साथ अपनी हैसियत के भीतर पूरक खाद्यों के रूप में शिशु खाद्यों का भी उपयोग किया जाये।

पूरक खाद्यों के रूप में अन्न की शुरूआत

बच्चा जब चार मास का हो जाये, तो उसे स्टार्चयुक्त तरल (अर्ध-ठोस) खाद्य देना आरंभ कर देना चाहिए। इसके

पहले देने का कोई लाभ नहीं, क्योंकि बच्चा उसे मुंह से उगल देगा।

देने को कोई भी स्टार्चयुक्त खाद्य दिया जा सकता है, किंतु बच्चे की कमजोर पाचन-क्रिया को ध्यान मे रखते हुए वह अच्छी तरह तैयार किया तथा पकाया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए गेहूं की रोटी बड़े लोग हजम कर सकते हैं, पर शिशु नहीं---शिशुओं को देने के लिए आटे को उबालना (राब बनाकर देना) जरूरी है। बच्चे को इन अनाजों में से कोई भी दिया जा सकता है---भुने हुए चावल (हो सके, तो सेला) के आटे की राब; या इसी तरह से तैयार किया गेहूं के आटे का पतला दलिया या राब; या रागी की राब; अथवा छीलकर सुखाये मलबारी केले के चूर्ण की राब। इनमें से किसी-को भी प्याले में रखकर चम्मच से खिलाया जा सकता है। इसमें थोड़ा दूध मिला लेना ज्यादा ठीक रहेगा। अगर राब बच्चे को उसके दूध के साथ ही देनी हो, तो बोतल के चूचुक का छेद बड़ा करना होगा। दक्षिण भारत के निर्धन लोगों में सस्ते होने के कारण चोलम, तपिओका तथा कंबु शिशु खाद्यों के रूप में खूब चलते हैं। दक्षिण भारतीय खाद्य 'इडली', जो चावल तथा दाल के मिश्रण से बनाई जाती है, अच्छी पकी और मुलायम हो, तो आसानी से पच जाती है और ६ महीने के बाद बच्चों तक को दूध में मिलाकर चम्मच से दी जा सकती है। दक्षिण भारत का एक और खाद्य 'इडियाप्पम' है, जो चावल से ही बनता है और सस्ता होने के कारण गरीबों में लोकप्रिय है। इसका भी शिशुओं के पूरक खाद्य के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। बाजार में 'फेरेक्स', 'सेरेक्स', 'पेबलम' आदि नामों से पकाये हुए गेहूं, जौ तथा ओटमील भी डिब्बों में बंद बिकते हैं। ये बच्चों को बस दूध के साथ मिला भर देने पर दिये जा सकते हैं। बच्चे को स्तन-पान कराने या बोतल से दूध पिलाने के दिनों में ही एक बार

एक चाय का चम्मच भर दलिया या राब देना शुरू करके कृत्रिम आहार आरंभ किया जा सकता है और इसकी मात्रा २-३ बड़े चम्मच तक (आधा प्याला डिब्बे का खाद्य या आधा प्याला घर में बनाई राब) की जा सकती है--पर मात्रा बढ़ाने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। शुरू-शुरू में तरल भोजन की आदत न होने के कारण बच्चा उसे लेने से अनिच्छा प्रकट कर सकता है या उसे उगल भी दे सकता है। ऐसा हो, तो कुछ दिन ठहर जाइये और उसके बाद फिर से देना शुरू कीजिये। बच्चा जब एक अनाज का आदी हो जाये, तब दूसरा भी दिया जा सकता हैं। डबल रोटी, रस्क तथा सूखे बिस्कुट के टुकड़े भी दिये जा सकते हैं, लेकिन मां को ध्यान रखना चाहिए कि जमीन पर गिरे टुकड़े बच्चे के मुंह में न दिये जायें।

सब्जियां देना शुरू करना

बच्चा जब ३ से ५ महीने का हो जाता है, तो पश्चिमी देशों में ठोस अथवा अर्ध-ठोस (तरल) खाद्यों में दी जानेवाली चीजों में सब्जियां भी शामिल की जाती हैं। सब्जियां कब्ज दूर करती हैं और साथ ही लोहा तथा अन्य खनिजों की भी भंडार हैं। शुरू में सामान्यतया एक ही पत्तेदार सब्जी (जैसे, पालक) आरंभ की जाती है, फिर चुकंदर, फूलगोभी का कोमल भाग, गाजर और आलू आदि की शुरूआत करते हैं। प्याज तथा पत्तागोभी जैसी सब्जियां, जिनको हजम करना मुश्किल है, तथा वे सब्जियां, जिनमें अधिक रेशे रहते हैं या बीज होते हैं (जैसे, भिंडी, परवल, आदि), नहीं दी जानी चाहिएं। सब्जियों को ठीक से धोने के बाद बारीक काटकर गरम पानी में थोड़ा नमक डालकर उबाल लेना चाहिए। बच्चों को देने के पहले, उबली हुई सब्जी को साफ चम्मच से उसी पानी में गूदा बनाकर छान लेना चाहिए और बच्चे को
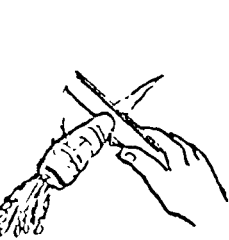
चित्र ४० (अ)
सब्जी बारीक काटी
जा रही है
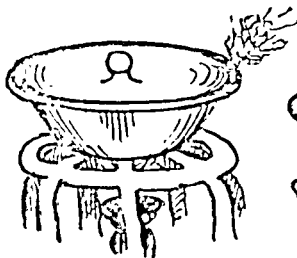
चित्र ४० (ब)
काटी सब्जी पकाई
जा रही है
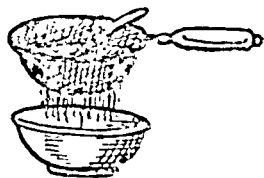
चित्र ४० (स)
पकी सब्जी छानी
जा रही है

शोरबा ही देना चाहिए। शोरबा बनाने के लिए आमतौर पर ३ भरे बड़े चम्मच महीन कटी हुई पत्तीदार सब्जी और २ भरे बड़े चम्मच कोई जड़वाली सब्जी का इस्तेमाल किया जा सकता है। परिवार के लिए बनी हुई (बिना मसाले की) उबली हुई सब्जी का भी उपरोक्त मात्रा मे गूदा बनाकर दिया जा सकता है। बच्चे को एक बार में एक-एक करके नई-नई सब्जियों की आदत डालनी चाहिए।

अच्छी तरह उबले हुए आलू को कुचलकर दिया जा सकता है। बच्चे के नौ महीने का हो जाने और उसे सब्जियां लेने का अभ्यस्त हो जाने के बाद पकाई सब्जी की लुगदी बनाना जरूरी नही है। सिर्फ उसे कुचलकर उसके रेशेवाले बड़े भाग निकाल देने चाहिएं। भारत में बच्चों को सब्जियों की शुरूआत देर से—उनके एक साल का हो जाने के बाद, की जाती है। लेकिन यदि सब्जियां आदि जल्दी देना शुरू कर दिया जाये, तो बच्चे के चेहरे पर सुर्खी आ जाती है (चेहरे का पीलापन सब्जियों में विद्यमान लोहे से जाता रहता है) और उसे कब्ज रहता हो, तो वह भी कम हो जाता है। माताओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों के प्रयोग में आनेवाले बर्तन साफ और कीटाणुरहित रहने चाहिएं। इन

घरों में तथा ऐसे स्थानों पर, जहां ये सावधानियां ठीक से नहीं बरती जा सकतीं, यह बेहतर रहेगा कि जबतक बच्चा एक वर्ष का न हो जाये, उसे सब्जियां दी ही न जायें।

अंडे—जो लोग कट्टर दृष्टि से निरामिषाहारी नहीं हैं, उनके बच्चों के लिए अंडा एक बहुत ही मूल्यवान खाद्य है, क्योंकि इसमें लोहा और फासफोरस जैसे खनिज, विटामिन और अन्य पोषक तत्व बहुतायत से होते हैं। बच्चे को उसके ७-८ महीने का हो जाने पर, शुरू में अंडे का पीला भाग (जर्दी) ही—उबालकर या अध-उबला—दिया जाना चाहिए। बच्चा अगर एक चाय का चम्मच भर जर्दी पचा लेता है, तो उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जा सकती है, यहांतक कि एक बार में एक पूरे अंडे की जर्दी उसके भोजन के एक भाग के रूप में दी जा सकती है। जर्दी देने के बाद बच्चे को बोतल का दूध पिलाना चाहिए या स्तन-पान कराना चाहिए। यदि अंडे का स्वाद बच्चे को पसंद नहीं आये, तो यह उसे अन्न अथवा दूध में मिलाकर दिया जा सकता है। कुछ बच्चे इसे लेते ही उलटी कर देते हैं, या उनके शरीर में पित्ती उछल आती है। इस हालत में अंडा फौरन बंद कर देना चाहिए और बच्चा जब कुछ बड़ा हो जाये, तो थोड़ा-थोड़ा करके फिर से शुरू करना चाहिए। जबतक बच्चा एक साल का न हो जाये, उसे अंडे की सफेदी नहीं देनी चाहिए, क्योंकि हो सकता है कि वह बच्चे को माफिक न आये और उसकी तबीयत खराब हो जाये।

केला—बच्चे पके केले (चित्तीदार, पीले छिलकेवाले, या हरी छाल के पके हुए) आसानी से पचा सकते हैं। इससे उन्हें कुछ शक्ति, विटामिन और खनिज प्राप्त होते हैं। केरल राज्य में बच्चों को लगभग आरंभ से ही मलबारी केले (पके हुए और रांधे हुए कच्चे, दोनों तरह के) पूरक खाद्य के रूप में दिये जाते हैं और अगर मिल सकते हों, तो ये कहीं भी दिये जा सकते हैं।

संतरा—संतरे के ताजे रस में विटामिन 'सी' बहुतायत से रहता है, जो बढ़ते हुए बच्चों के लिए आवश्यक है। इसके अलावा संतरे का रस थोड़ा दस्तावर भी होता है और इसलिए इससे कब्ज की शिकायत को दूर करने में भी सहायता मिलती है। बच्चा जब एक महीने का हो, तभी से एक चम्मच भर रस देने से शुरुआत की जा सकती है। धीरे-धीरे एक संतरे के रस (२-३ औंस) को उसमें उतना ही पानी मिलाकर दे सकते है। गुलाबी संतरे (नागपुरी या कमला) में विटामिन कुछ अधिक होते हैं। संतरे का रस खासा मीठा होना चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रस को कीटाणुओं से मुक्त रखने के लिए संतरा, हाथ, चाकू, बर्तन तथा रस निकालनेवाला पात्र—सब ठीक साफ कर लिये गये हों। आमतौर पर लोगों का यह विश्वास है कि नारंगी के रस से बच्चों को सरदी लग जायेगी, किंतु ऐसा मानने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। पर रस खट्टा नहीं होना चाहिए। इसे आवश्यकतानुसार शक्कर मिलाकर मीठा बनाया जा सकता है। डिब्बाबंद संतरे या टमाटर के रस में से कुछ विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है।

टमाटर—ताजे और पके टमाटर के रस मे भी विटामिन 'सी' रहता है, लेकिन नारंगी से कम, इसीलिए टमाटर का रस दुगनी मात्रा में, ४-६ औंस तक, देना पड़ता है। टमाटर को उबालने से उसमें का विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है, अतः ठीक से साफ किये ताजे पके टमाटर को ही उपयोग में लाना चाहिए।

पके पपीते में विटामिन 'ए' और 'सी' दोनों ही रहते हैं। यह सस्ता भी पड़ता है, अतः जहां भी प्राप्त हो सके, बच्चों के लिए इसका उपयोग करना ठीक ही रहेगा।

विटामिन 'सी' के अन्य स्रोत—विटामिन 'सी' के अन्य स्रोत भी हैं, जैसे आंवला, जो बहुत ही सस्ता है, किंतु बहुत

अम्लीय होता है और इसलिए बच्चों को और वह भी केवल बड़े बच्चों को—इसका मुरब्बा बनाकर ही दिया जा सकता है। कोमल पत्तियोंवाली सब्जियां, जैसे कुलफा या पालक, उबालकर और कुचलकर दी जानी चाहिएं।

यदि निर्धनता के कारण परिवार नारंगी या टमाटर नहीं खरीद सकता, तो विटामिन 'सी' की गोलियां, जो बहुत सस्ती होती हैं (तीन नये पैसे की एक गोली), थोड़े उबालकर ठंडे किये हुए पानी में घोलकर दी जा सकती हैं। असल में अधिकतर परिवारों की आर्थिक अवस्था तथा स्वच्छता संबंधी आदतें ऐसी हैं कि बच्चा जबतक ६-७ माह का न हो जाये, तबतक उसे यथेष्ट मात्रा में मां का दूध और तरल रूप में विटामिन देना ही ज्यादा अच्छा है और पूरक खाद्य इसके पहले उसे नहीं दिये जाने चाहिएं।

दाल, मूंगफली तथा मांस

भारतवर्ष में बच्चों के आहार में पूरक खाद्यों के रूप में दालों का अधिक उपयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि इनमें अन्नों की अपेक्षा प्रोटीन (मांस बनानेवाला अंश) बहुत अधिक रहता है। चना, अरहर की दाल, उड़द की दाल आदि में से कोई भी ठीक से पकाकर दिया जा सकता है। मद्रास और कुन्नूर में किये खाद्य परीक्षणों से पता चला है कि डेढ़ साल से कम उम्र के बच्चों के लिए अच्छी तरह भुना हुआ तथा बारीक पीसा हुआ चना अच्छा रहता है। बच्चे इसे ठीक से पचा सकते हैं। खांड की चासनी के साथ मिलाने पर इसका स्वाद भी अच्छा हो जाता है और बच्चे इसे खूब पसंद करते हैं। भुना हुआ चना सबसे सस्ता भी पड़ता है और सब जगह मिलता भी है। दूसरे प्रकार की दालें भी पकाकर दी जा सकती हैं।

डेढ़ वर्ष की आयु के बाद बच्चे को उबली हुई या भुनी मूंगफली देना भी प्रोटीन का सस्ता और अच्छा साधन है।

बच्चे के एक वर्ष का हो जाने पर मांसाहारी माता-पिता उसे चरबी-रहित गोश्त का कीमा और सफेद मछली, मुर्गी का चूजा, उबला हुआ जिगर या बेकन (सूअर का भुना हुआ गोश्त) भी थोड़ी मात्रा में दे सकते हैं, हालांकि पश्चिमी देशों में अब पहले कीमा ही दिया जाता है।

सारांश—ठोस और तरल खाद्यों को देने से संबंधित सुझावों को संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है :

सबसे पहले दिया जानेवाला तरल खाद्य कोई भी अच्छा पका हुआ स्टार्चयुक्त खाद्य हो सकता है। पहले कोई एक खाद्य शुरू कीजिये और धीरे-धीरे उसकी मात्रा बढ़ाइये। इसमें जल्दबाजी कभी मत कीजिये और अगर कोई खाद्य बच्चे को पसंद नहीं आता, तो बंद कर दीजिये और फिर कुछ दिन ठहरकर शुरू कीजिये। बच्चा जब एक खाद्य का आदी हो जाये, तब दूसरे की शुरूआत कर दीजिये। खाद्य कोमल, मुलायम और रेशेरहित होना चाहिए। अंतिम और महत्वपूर्ण बात यह याद रखना है कि कोई जरूरी नहीं कि बच्चा एकदम ही खूब खाने लगे—इसमें सबर से काम लेना चाहिए।

आदर्श स्वच्छतावाले घरों में शिशु खाद्य में नई वस्तुओं का क्रम

१ – २ महीने	नारंगी या टमाटर का रस।
३ – ५ महीने	अन्न (बनाने की विधि के लिए परिशिष्ट देखिये), गाजर या पालक को पका, कुचल और छानकर निकाला रस, उबले हुए आलूबुखारे का रस।
५ – ६ महीने	सब्जियों का सूप तथा छलनी से छनी हुई सब्जियां, जिगर या मांस का शोरबा, पका हुआ केला या पपीता (कुचला हुआ)।
६ – ७ महीने	कुचली हुई सब्जियां (रेशेरहित), अंडे की जर्दी, अच्छी तरह से पकी दालें, इडली।
८ – १२ महीने	टोस्ट या रस्क, गोश्त या जिगर, पूरा अंडा।
१२ – १४ महीने	छलनी से छानी हुई मछली, कीमा तथा मुर्गी का चूजा।
१४ – १८ महीने	भुना हुआ कीमा, उबली या भाप से पकाई मछली।

पहले साल के बाद बच्चे का भोजन

खाने के समयों के बीच का अंतर धीरे-धीरे इस प्रकार बढ़ाया जा सकता है कि डेढ़ साल का होते-होते बच्चा दिन में सिर्फ चार बार ही मुख्य आहार करे। बच्चे को नौ महीने के उपरांत अपने-आप खाना सिखाना चाहिए। मां इस काम में इस तरह सहायता करे कि बच्चे को उसका आभास न हो। निर्धारित खाने के समय के बीच कुछ और खाने को नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे मुख्य आहारों की भूख मारी जाती है। बच्चे को भोजन के लिए डराना, धमकाना या लालच नहीं देना चाहिए।

खाने में निम्नलिखित चीजें दी जा सकती है, लेकिन यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भारत में इस समय दूध, अंडे, मछली और गोश्त गरीब परिवारों के बच्चों को प्राप्त नहीं है। फिर भी ये बच्चे मुलायम और अच्छी तरह से पकी हुई उन दालों, अनाजों और सब्जियों पर ही स्वस्थ रखे जा सकते हैं, जो पूरे परिवार के लिए बनती हैं। इनमें अकेले बच्चे के लिए किसी विशेष तैयारी की जरूरत नहीं रहती है। सस्ता और सहज प्राप्य भोजन यदि ठीक से चुना जाये, तो बच्चों की अपौष्टिकता और भोजन की कमी काफी हद तक कम की जा सकती है।

दूध—बच्चे को बीस से लेकर तीस औंस तक शुद्ध दूध रोज दीजिये। दूध की कुछ मात्रा अन्य दुग्ध पदार्थों, जैसे दही, कस्टर्ड या पुडिंग तथा दूध-दही की बनी अन्य चीजों के रूप में भी दी जा सकती है। शुद्ध दूध न मिले, तो मक्खन निकाला हुआ दूध भी दिया जा सकता है।

अंडे—मांसाहारी परिवारों में एक अंडा रोज दिया जाना चाहिए। तले हुए अंडे के बजाय मुलायम, उबला हुआ, या कुचला हुआ अंडा देना ज्यादा ठीक रहेगा।

दालें—जिन परिवारों में अंडे, मछली और मांस का

प्रयोग नहीं किया जाता, वहां चने, मूंग, उड़द, अरहर, आदि दालों का उपयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि दालें प्रोटीन की बड़ी महत्वपूर्ण साधन हैं। चने को पचने योग्य बनाने के लिए उसे उबालना या भूनना आवश्यक है। पानी में भिगाकर अंकुर निकालने से भी यह जल्दी पचने लगता है। साथ ही इसमें विटामिनों की मात्रा भी बढ़ जाती है—गरीब परिवारों के लिए प्रोटीन पाने का यह एक बड़ा सस्ता और अच्छा साधन है। दक्षिण भारतीय खाद्य 'इडली' देकर बच्चों को दाल और अनाज दोनों आसानी से दिये जा सकते हैं। 'इडली' रात भर भिगोये हुए चावल और उड़द की दाल की पिट्ठी में खमीर उठाकर और फिर उसे भाप में पकाकर बनाई जाती है। गुजरात में इसी तरह चावल और बेसन में छाछ मिलाकर 'ढोकला' बनाते हैं, जो बहुत उपयोगी होता है।

दक्षिण भारत में बिकनेवाले चने या तिल और गुड़ के लड्डू १-२ वर्ष के ऊपर के बच्चों के लिए ठीक हैं, बशर्ते कि उन्हें मक्खियों और कीटाणुओं से बचाकर बनाया तथा रखा जा सके। किंतु बाज़ार में बिकनेवाली सभी मिठाइयों में आमतौर पर मक्खियां टाइफाइड और पेचिश के कीटाणु पहुंचा देती हैं और वे हानिकर होती हैं।

अनाज—गेहूं, चावल, रागी तथा तपिओका भारत के विभिन्न भागों में पकाकर खाये जाते हैं। सारे संसार में अनाज मनुष्य का मुख्य भोजन है और उसे दैनिक कार्य के लिए शक्ति देता है। किंतु इसमें प्रोटीन (जो मांसपेशियों को बनाने के लिए जरूरी है) बहुत कम रहता है, अतः इसकी पूर्ति के लिए उसके साथ दूध, गोश्त अथवा दालें लेनी पड़ती हैं। दक्षिण भारतीयों के मुख्य भोजन तपिओका में तो प्रोटीन लगभग बिलकुल ही नहीं होता, जबकि गेहूं में कुछ होता है। चावल और रागी में भी कुछ प्रोटीन रहता है,

पर गेहूं से कम। रागी में कैलशियम (हड्डियां बनाने के लिए आवश्यक खनिज) अन्य अनाजों से अधिक होता है। बच्चों को गेहूं देने के लिए भूरी डबल रोटी (ब्राउन ब्रेड) सबसे अच्छी रहती है। चपाती डबल रोटी जितनी आसानी से नहीं पचाई जा सकती। जिन जगहों पर दूध की कमी होती है, वहां गेहूं तथा दालें खानेवाले बच्चे चावल, तपिओका या बाजरा खानेवाले बच्चों से अधिक हृष्ट-पुष्ट होते हैं।

बाजरा या बाजरा जैसे धान्य—भारत के कई भागों में बड़ों का यही मुख्य भोजन है। कोदो अधिक रेशेदार होने के कारण बच्चों के लिए अनुपयुक्त होता है।

मूंगफली—इसमें प्रोटीन बहुतायत से होता है और गरीब परिवारों में, जहां दूध, गोश्त, मछली तथा अंडे वगैरा नहीं खरीदे जा सकते, यह बहुत उपयोगी रहती है। इसे पाचन योग्य बनाने के लिए उबालना या भूनना जरूरी है। खांड, भुने चने तथा भुनी मूंगफली की बनी टाफी निर्धन बच्चों को पोषक आहार तथा प्रोटीन देने का एक सस्ता साधन है।

सब्जियां—विटामिन ('ए' तथा 'सी') और खनिज (लोहा तथा कैलशियम) प्राप्त करने व आंतों की नियमित कार्यविधि बनाये रखने के लिए सब्जियां, जिनमें खासी मात्रा में हरी पत्तीदार सब्जियां भी शामिल हों, खूब खानी चाहिएं। पत्तीदार हरी सब्जियों में पालक, कुलफा, बथुआ वगैरा सस्ती और अच्छी हैं। गाजर कुछ मंहगी होने पर भी विटामिन 'ए' का अच्छा स्रोत है। कच्चे केले, यदि रांधकर खाये जायें, तो उनसे लगभग सभी विटामिन खासी मात्रा में प्राप्त हो सकते हैं।

आंवला विटामिन 'सी' का सस्ता और अच्छा स्रोत है। किंतु यह मौसम में ही प्राप्त होता है। कच्चे आम में भी विटामिन 'ए' होता है।

दूसरी सब्जियां, जैसे पत्तागोभी, फूलगोभी, गांठगोभी, आदि मंहगी होते हुए भी कोई विशेषता नहीं रखतीं और ज्यादातर गरीब परिवार उन्हें खरीद भी नहीं सकते।

फल—केला सबसे सस्ते फलों में से एक है। इसमें पोषक तत्व खासी मात्रा में होते हैं तथा विटामिन 'बी' भी बहुत मात्रा में होता है। पके अमरूद में विटामिन 'सी' बहुतायत से होता है, किंतु वह आसानी से पचता नहीं। पके पपीते मे विटामिन 'ए' और कुछ 'सी' भी रहता है। इसका खूब उपयोग करना चाहिए—खासकर गरीब भारतीय परिवारों मे, जहां बच्चों को प्राय: विटामिन 'ए' की कमी होती है। किशमिश में काफी मात्रा में कैलशियम, कुछ विटामिन 'बी' और लोहा भी मिलता है, किंतु इसकी पोषक खाद्य के नाते उपयोगिता कम है। इमली पर भी यही बात लागू होती है। गन्ने के रस से कुछ शक्ति तो मिलती है, किंतु इसमें विटामिन नहीं के ही बराबर होते हैं।

स्कूल जानेवाले बच्चों का भोजन—पिछले कुछ दशकों के परीक्षणों से इस बात की काफी जानकारी मिली है कि मनुष्य शरीर के पोषण के लिए किन-किन तत्वों की आवश्यकता रहती है और यह बताना संभव हो गया है कि जनता के विभिन्न आयु-समुदायों की खुराक में घर पर, स्कूल में या कैंटीन में कैसे सुधार किये जा सकते हैं।

नीचे दी गई तालिका तैयार करते समय स्थानीय पाक-विधियों और कीमतों का भी खयाल रखा गया है। भोजन को संतुलित बनाने के लिए खाने की आदतों में थोड़ा-बहुत फेर-बदल जरूरी है। उदाहरण के लिए, दक्षिण भारत में चावल मुख्य भोजन है, किंतु वहां के स्कूलों में दोपहर के खाने के लिए हमने जिन चीजों की सलाह दी है, उनमें चावल के कुछ भाग की जगह गेहूं, बाजरा आदि का सुझाव दिया गया है, क्योंकि नवीन खोजों के अनुसार प्रचलित भोजनों की अपेक्षा

ऐसी दो-तीन चीजों के मेल अधिक उपयोगी रहते हैं। चने, उड़द, चौले आदि की दालों का सस्ती तथा सुलभ होने के कारण लाभदायक उपयोग किया जा सकता है। इसीलिए प्रस्तावित खाद्यों में इनका अधिक उपयोग किया गया है। दूध (थोड़े दही को छोड़कर), गोश्त, मछली और अंडे यही सोचकर शामिल नहीं किये हैं कि वे ज्यादातर भारतीय परिवारों की पहुंच के बाहर हैं और कई परिवारों में तो अंडे या मांस का प्रवेश ही नहीं होता। हां, जो परिवार इतना व्यय वहन कर सकें, और जो शाकाहारी न हों, उन्हें दूध (शाकाहारी बच्चों के लिए २० औंस और मांसाहारी बच्चों के लिए १० औंस), एक अंडा, यथेष्ट (पर अधिक नहीं) अनाज, सब्जियां, फल और कुछ मात्रा में दालें आदि सुझाई जा सकती हैं।

स्कूल में दोपहर का भोजन—इसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता देखते हुए संबंधित अधिकारीगण निम्नलिखित बातें ध्यान में रखें, तो अच्छा रहेगा :

१. स्कूल में भोजन-कार्यक्रम का उद्देश्य केवल भूख मिटाना ही नहीं, वरन घर के भोजन में जिन पोषक तत्वों की कमी रह जाती है, उन्हें पूरा करना और भोजन संबंधी अच्छी आदतें डालना है।

२. परंपरानुसार चले आ रहे भोजन का आग्रह न रखकर नई-नई खोजों से मालूम हुई जानकारी से लाभ उठाना चाहिए। उदाहरण के लिए, चावल को कम करके उसकी जगह गेहूं का भी उपयोग, हरी और सस्ती सब्जियों, दालों व मक्खनरहित दूध का उपयोग।

स्कूल के भोजन की प्रस्तावित तालिका (व्यंजनों के लिए परिशिष्ट देखें):

उत्तर भारत के लिए—(अ) गेहूं तथा बेसन, हरी पत्तियां, कुछ तेल, प्याज और हरी मिर्च की बनी मिस्सी रोटी।

या

(ब) ज्वार, बाजरा, मक्का या रागी के आटे की रोटी।

या

(स) निम्न किसी एक के साथ गेहूं या रागी की राब :

१. बड़ी की सब्जी।
२. हरी पत्तीदार सब्जियों की भुजिया (पालक और आलू वगैरा से बनी)।
३. आलू का रायता।
४. हरी पत्तीदार सब्जियों के साथ पकी हुई दाल।
५. खामुन ढोकला (खमीर उठाये हुए बेसन, और चावल के आटे को भाप में सेंककर)।
६. आलू छोले (काबुली चने और आलू)।

दक्षिण भारत के लिए :

गेहूं की राब, गेहूं तथा चावल की राब।
गेहूं तथा दाल के लड्डू।
इडली, सूजी और दाल की बनी रवा इडली।
इडियाप्पम (गेहूं और चावल के आटे से बना)।
पोंगल (चावल और मूंग की दाल से बनी)।
गेहूं का उपुमा।
पनियारम (खमीर उठे चावल और उड़द की दाल से बनी) और खांड, नीचे लिखे किसी एक के साथ :

बड़ा, तपिओका तथा मछली की करी, कटलेट या गेहूं, चने और मूंगफली के आटे के बने नमकीन बिस्कुट।

दक्षिण भारतीय व्यंजन उत्तर भारत में और इसी प्रकार उत्तर भारतीय व्यंजन दक्षिण भारत में अपनाये जा सकते हैं और उनका लाभ उठाया जा सकता है।

: ५ :

वृद्धि तथा विकास

शारीरिक वृद्धि—नवजात शिशु का भार, जो जन्म के समय केवल ६ से ८ पौंड तक ही रहता है (औसत ६॥ पौंड), जन्म के पांच माह के बाद लगभग दुगुना हो जाता है। पहले तीन महीनों में उसके वजन में कोई १ औंस प्रति दिन के हिसाब से वृद्धि होती है। इसके बाद की वृद्धि इतनी तेजी से नहीं होती। प्रति दिन आधा औंस के हिसाब से बढ़ते-बढ़ते जन्म के साल भर के बाद शिशु का वजन अपने जन्म के समय के वजन से तीन गुना हो जाता है। कुछ तो वजन बढ़ने की धीमी गति के कारण, तथा कुछ बच्चे की रुचि भोजन के अतिरिक्त अन्य चीजों की ओर बंटने के कारण, २-३ साल के बच्चे के दूध और भोजन की मात्रा में साधारणतः कुछ कमी आ जाती है। माताओं को इसका खयाल रखना चाहिए।

५ वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते बच्चे का औसत वजन ४० पौंड और ऊंचाई ४० इंच हो जाती है। 'औसत' का अर्थ यह है कि इस उम्र में पूर्णतया स्वस्थ बच्चा इससे थोड़ा कम या ज्यादा भी हो सकता है। इसके बाद बच्चा धीमी, पर स्थिर गति से बढ़ता रहता है। किंतु शैशवावस्था के खतम होने के आसपास बच्चों के वजन में फिर तेजी से बढ़ती होने लगती है। लड़कियों की वृद्धि में यह तेजी लड़कों की अपेक्षा कुछ जल्दी—कोई १०–११ साल की उम्र में ही प्रारंभ हो जाती है। हालांकि इस प्रकार के

चार्ट उपलब्ध हैं, जो विभिन्न उम्रों के बच्चों की औसत लंबाई तथा वजन बताते हैं, किंतु माता-पिता को यह ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों का ढांचा हलका, मझला अथवा औसत से कुछ अधिक भी रहता है। ज्यादा जरूरी यह है कि समय-समय पर बच्चों के वजन, ऊंचाई तथा अन्य नापों की वृद्धि की गति पर ध्यान रखा जाये। वजन तथा ऊंचाई के अतिरिक्त बच्चे की वृद्धि तथा विकास का पूरा-पूरा जायजा लेने के लिए उसकी मांसपेशियों की सख्ती, उसके होठों और गालों की रंगत, उसकी दक्षता तथा उसके व्यवहार आदि की देखभाल करते रहना भी आवश्यक है।

दक्षता का विकास

नवजात शिशु पालने में चुपचाप पड़ा रहत ाहै। वह अपना सिर नहीं उठा सकता, चलनी-फिरती वस्तुओं का अपनी आंखों से अनुसरण नहीं कर सकता, और न किसी को पहचानकर मुसकरा ही सकता है। (हालांकि कभी-कभी नींद में वह मुसकराने लगता है, माताएं इसके मन चाहे अर्थ लगा लेती हैं)। लेकिन यह सब वह १ महीने का होने के बाद ही कर सकता है। किंतु काफी समय तक अपना सिर स्थिर रखना या किसी हिलती हुई चीज को पकड़ने की कोशिश आदि हरकतें वह चार महीने का हो जाने के बाद ही कर सकता है। ५ महीने का हो जाने के बाद वह लोट लगाने, या खिलौनों को हिलाने-डुलाने, और किसी वयस्क की गोद में सहारे के साथ सीधा बैठने लग सकता है। ७ महीने का बच्चा पेट या घुटनों के बल घिसट सकता है (हालांकि कुछ बच्चे बिलकुल नहीं घिसटते) और आठ माह का हो जाने के बाद वह बिना किसी सहारे के बैठने भी लगता है। ९ से १० माह के बीच वह खड़े होने की कोशिश करता है, किंतु गिर-गिर पड़ता है, अस्पष्ट रूप से कुछ-कुछ बोलना

शुरू करता है और कुछ बातें समझता भी है। १ साल का हो जाने के बाद वह किसी सहारे के साथ थोड़ा-थोड़ा चलने लगता है। अधिकांश बच्चे १३ से १६ महीने के होने के बाद ही चलना सीखते हैं और कुछ बच्चे तो १८ महीने के बाद। यदि २४ महीने का हो जाने के बाद भी बच्चा चलना न सीख पाये, तो इसका कारण जानने के लिए किसी डाक्टर की सलाह लेना आवश्यक है।

उसे यदि थोड़ी सहायता और मौका दिया जाये, तो १।। साल का हो जाने के बाद बच्चा बिना ज्यादा गिराये खुद ही चम्मच से खाना भी आरंभ कर देता है। इस उम्र में वह दूसरों को देख-देखकर काम करने लगता है। यदि करके बताया जाये, तो वह एक के ऊपर एक लकड़ी के चौकोर गिट्टे रख सकता है। इस उम्र में वह कुछ निश्चित शब्द भी बोलना सीख जाता है—अम्मा, पापा, बाबा, आदि शब्द उसे इस समय तक आ जाते हैं। दो साल का हो जाने के बाद भी बच्चे के न बोल सकने के कई कारण हैं। हो सकता है कि माता-पिता बच्चे को बोलने के लिए उत्साहित न करते हों या किसी चीज का नाम लेकर मांगने के पहले ही वे उसे वह चीज दे देते हों। इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि बच्चे के सुनने में कोई गड़बड़ी हो अथवा उसका बौद्धिक विकास रुक गया हो। पर इसका यह मतलब नहीं है कि जो बच्चे जल्दी बोलना सीख जाते हैं, उनका बौद्धिक स्तर ऊंचा है। चूंकि बोलना अनुकरण से आता है, इसलिए माता-पिता तथा अन्य संरक्षकों को चाहिए कि वे बच्चों के साथ बच्चों की तरह ही 'तुतला' कर न बोलें। सुन सकने की सही क्षमता पर भी बोलना निर्भर करता है।

यदि बच्चे की सुनने की शक्ति में कोई छोटी-मोटी कमी हो, तो हो सकता है कि वह जल्दी मालूम ही न पड़े और कक्षा में पढ़ाते समय स्कूल के अध्यापक ही इसका पता लगा पायें।

किसी बड़ी कमी का अनुमान सामान्यतः तो उसी समय हो जाता है कि जब बच्चा तेज आवाज पर भी नहीं चौंकता अथवा आवाज की दिशा में नहीं देखता। किसी कारणवश यदि सिर उठाने की क्षमता अथवा बैठने-सुनने-बोलने और देख सकने की शक्ति में कोई कुछ कमी प्रतीत हो, तो बच्चे को शिशु-विशेषज्ञ को तुरंत दिखाना चाहिए।

दांत निकलना

५-६ महीने का हो जाने पर शिशु के दांत निकलना प्रारंभ हो जाते हैं। सबसे पहले नीचे के बीच के दांत निकलते हैं। २-२॥ साल तक धीरे-धीरे सारे दांत निकल आते हैं। शुरू के दांतों के निकलने में कभी-कभी तंदुरुस्त बच्चों में भी देर हो सकती है। दस्त लगना, बुखार आना अथवा ऐंठन जैसी कई दूसरी बीमारियों को साधारणतः दांतों के उगने से संबंधित कर दिया जाता है, जबकि इनके अधिकतर कारण दूसरे ही होते हैं। इसका कारण यह भी है कि दांत कुछ-कुछ समय के अंतर से निकलते हैं और ये बीमारियां भी इसी उम्र में कुछ-कुछ अंतर पर होती रहती हैं। कई बच्चों के दांत बिना किसी तकलीफ के ही उग आते है। दांत निकलते समय बच्चा कभी-कभी चिड़चिड़ा हो जाता है। उसके मुंह से लगातार लार गिरती रहती है, अथवा वह कुछ खाने या पीने से इनकार कर देता है।

दांत निकलते समय बच्चों को 'टीथिंग पाउडर' या इसी तरह की किसी दूसरी दवाइयों की कोई आवश्यकता नहीं रहती, बल्कि इनमें से कई दवाइयां तो नुकसानदेह भी होती हैं। ६ साल की उम्र के बाद बच्चों के दूध के दांत गिरने प्रारंभ हो जाते हैं। दांत गिरने का क्रम भी नीचे के बीच के दांतों से शुरू होता है और इनके स्थान पर पक्के दांत आने लगते हैं। इस क्रम में यदि किसी प्रकार की बड़ी अनियमितता

हो, तो दांत के डाक्टर को दिखाना ठीक रहता है। (जैसे कई बार दूध के दांतों के गिरने के पूर्व ही पक्के दांत उगने लगते हैं और ऐसी स्थिति में यदि दूध के दांतों को न निकलवाया गया, तो पक्के दांत सीधे और ठीक जगह नहीं जम पायेंगे।)

दुबले-पतले बच्चे

कुछ बच्चे तो दुबले होते, ही हैं, और इस प्रकार का दुबलापन एक पारिवारिक प्रवृत्ति है। ऐसे बच्चे अन्यथा पूर्ण रूपेण स्वस्थ होते हैं और ताकत देनेवाले टानिक और विटामिन की गोलियां देने से उनको तो नहीं, हां औषधि-निर्माताओं तथा विक्रेताओं को अवश्य फायदा होता है। बच्चे किसी बीमारी या गलत खुराक के कारण भी दुबले हो जाते हैं। इसका कारण यह भी होता है कि कई बार माता-पिता की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती कि वे अपने बच्चों को पौष्टिक भोजन दे सकें। कई बच्चों पर तो यह दुबलापन एक प्रकार से लाद दिया जाता है। अपने बच्चों की जरूरत से ज्यादा फिकर रखनेवाली माताएं बच्चों को ठूंस-ठूंसकर खिलाने के पीछे ही पड़ जाती हैं। कई माता-पिता अपने बच्चे की भूख की कमी से ही चिंतित रहते हैं। लेकिन बच्चों के कम खाने का कारण आखिर क्या है? बच्चे अपनी बाढ़ के अनुरूप भोजन कर सकने की क्षमता लेकर ही उत्पन्न होते हैं। किंतु यदि बच्चे को जबरदस्ती खिलाया जाये, तो खाने में उसकी अरुचि हो जाती है और वह उससे भागने लगता है।

बच्चों को खिलाने की समस्या उनके विकास के विभिन्न स्तरों पर प्रारंभ हो सकती है। शुरू के महीनों में मां बच्चे का पेट भर जाने पर भी उसे बोतल का सारा दूध खाली करने के लिए जबरदस्ती करती है, या बच्चे की इच्छा के

विरुद्ध उसे ठोस भोजन कराती है। माताओं को यह समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक बच्चा अपने तौर-तरीके से चलता है। कभी-कभी बीमारी के बाद, जबकि आमतौर पर वैसे ही भूख थोड़ी कम लगती है, मां बच्चे को जबरदस्ती ज्यादा खिलाना चाहती है, ताकि उसका बच्चा जल्दी ही फिर से मोटा-ताजा हो जाये। किंतु इसका उलटा ही असर होता है। बच्चा पूरी तरह अपनी असली भूख पर नहीं आ पाता। कुछ बच्चे किसी विशेष प्रकार का भोजन ही पसंद करते हैं। जहांतक हो सके, बच्चे की इस इच्छा का ध्यान रखना चाहिए और उसे जोर-जबरदस्ती मे वही भोजन नहीं देना चाहिए, जिसे माता-पिता उसके लिए पौष्टिक समझते हैं।

पर बच्चों की सारी भोजन समस्याओं का कारण जोर-जबरदस्ती ही नहीं है। बच्चे की भावनाओं में तनाव, जैसे, छोटे भाई या बहन के प्रति ईर्ष्या, अथवा स्कूल की कोई गड़बड़ी भी इसका कारण हो सकती है। इस संबंध में मां की अत्यधिक चिंता से समस्या और भी बढ़ सकती है। इस प्रकार की समस्या को सही और आसान तरीके से हल करने के लिए उचित यही है कि उसको बहलाकर खिलाया-पिलाया जाये, जिससे उसकी भूख धीरे-धीरे लौट सके। मां को इस संबंध में थोड़ा धीरज से काम लेना सीखना चाहिए। गलत कदम उठाने से वही समस्या फिर उठ खड़ी हो सकती है। बच्चे को थोड़ी मात्रा में उसकी रुचि का भोजन देना चाहिए और उसका ध्यान भोजन की ओर से हटा देना चाहिए। यदि वह सारा भोजन खतम कर दे, तो इसमें मां को खुशी जाहिर नहीं करनी चाहिए, बल्कि इसे साधारण ढंग से ही लेना चाहिए। यदि वह उसका अधिक भाग छोड़ दे, तो मां को अपनी असंतुष्टि को छुपा लेना चाहिए और अगली बार कम परोसना चाहिए। उसके खाने में धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार की चीजें जोड़ते जाना चाहिए,

यहांतक कि वह अपनी असली भूख के अनुरूप खाने लगे और उसका वजन भी बढ़ने लगे। मां का उद्देश्य बच्चे को जबरदस्ती खिलाना नहीं, वरन उसकी वास्तविक भूख को उस स्तर पर लाना होना चाहिए कि जिससे वह स्वयं खाना चाहने लगे।

साधारणतः दो वर्ष का होते-होते बच्चे को अपने-आप ही खाना खा लेना सीख लेना चाहिए। किंतु यदि मां उसे ३-४ साल तक अपने हाथों से खिलाती रही हो, तो यह क्रम एकदम ही नहीं बंद कर देना चाहिए। इससे उलटा बच्चे को यह लगेगा कि उसकी मां उसे प्यार नहीं करती। जब बच्चे को भूख लगे, तो मां को किसी काम में लगे रहने का बहाना करना चाहिए, ताकि बच्चा धीरे-धीरे अपने-आप खाने का आदी हो जाये।

: ६ :

बचपन की कुछ बीमारियां

बच्चों को छूत से लग सकनेवाली बीमारियों के बारे में बताने से पहले इस बात पर जोर देना ठीक रहेगा कि उनमें की कई बीमारियां—जैसे डिपथीरिया (घटसरप), हूपिंग कफ (कुक्कुर खांसी या काली खांसी), टी० बी० (तपेदिक) और बच्चों को होनेवाला लकवा (इनफेंटाइल पेरेलिसिस), आदि—शिशु अवस्था में ही निरोधक टीके लगवाने से रोकी जा सकती हैं। निरोधक टीका आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक है। बीमार बच्चे को, चाहे उसे मामूली सरदी और बुखार ही क्यों न हो, दूसरे बच्चों से अलग रखने में ही समझदारी है, क्योंकि छूत से लगनेवाली बीमारियों के भी प्रारंभिक लक्षण प्रायः यही होते हैं।

बच्चों की कई बीमारियों, जैसे, खसरा (मीजिल्स) और कुक्कुर खांसी में छूत लगने का सबसे अधिक डर उनके विशेष लक्षण, जैसे खसरा में दाने और कुक्कुर खांसी में खांसी की शुरुआत, प्रकट होने के पहले ही रहता है। अतः सरदी या बुखारवाले बच्चे को शुरू से ही अलग रखना अच्छा है। लक्षण कितने ही मामूली क्यों न हों, ऐसे बच्चों को स्कूल नहीं भेजना चाहिए। उनसे उनके सहपाठियों में भी कीटाणु फैल सकते हैं। डाक्टर को यह बतला देना भी बहुत जरूरी है कि शिशु या कमजोर बच्चे को पहले कोई छूत तो नहीं लगी है। अब ऐसी दवाएं मिलने लगी हैं, जो इन बीमारियों को रोक सकती हैं, या उनमें कुछ कमी ला सकती हैं।

डिपथीरिया (घटसरप)

यह बीमारी डिपथीरिया के कीटाणुओं के कारण होती है। ये कीटाणु गले के पिछले भाग में (टान्सिलों तथा उनके आस-पास) आकर रहते हैं और एक सफेद-सी झिल्ली बना देते हैं। कीटाणु श्वास-नली तक फैलकर सांस लेने में रुकावट पैदा कर सकते हैं। कीटाणुओं द्वारा पैदा किये गये विषों से भी खतरा होता है। इनकी वजह से बच्चा बीमार दिखने लगता है और ये बीमारी के दौरान या उसके बाद भी बच्चे के दिल पर भी असर कर सकते हैं। इस कारण बच्चे की हालत पर बड़ा ध्यान रखना चाहिए। रोग के लक्षण आरंभ में मामूली ही क्यों न हों, जैसे गले की साधारण खराश आदि—इसमें डाक्टर ही रोग के कारण का निदान कर सकता है। रोग का निदान हो जाने पर अगर डाक्टर को ऐसा लगे कि झिल्ली का भाग फैलकर श्वास-नली तक पहुंच रहा है, तो सांस लेना आसान बनाने के लिए डाक्टर के लिए श्वास-नली का आपरेशन करके उसमें एक नली डालना भी जरूरी हो सकता है। ऐसा डिपथीरिया खतरनाक होता है। कभी-कभी जबड़े के दोनों तरफ गले की ग्रंथियों में भी सूजन आ जाती है। इसके लिए एक बड़ी प्रभावशाली औषधि है डिपथीरिया की छूत से अभिरक्षित किये (इम्युनाइज्ड) घोड़े से प्राप्त टीका, हालांकि इसका असर होने के लिए यह आवश्यक है कि यह बीमारी की प्रारंभिक अवस्था में ही दे दिया जाये। देर करना खतरनाक हो सकता है।

खेद की बात है कि भारत में यह बीमारी बहुत फैली हुई है और बड़ी संख्या में बच्चों की जान लेती है। समय पर उपचार आरंभ करके इसे पूरी तरह से रोका जा सकता है। इस शताब्दी के आरंभ में पश्चिमी देशों में भी हालत ऐसी ही खराब थी, लेकिन बचपन में ही निरोधक टीकों के

उपयोग से इस रोग का अब उन देशों में लोप हो गया है।

पश्चिमी देशों में स्वास्थ्य अधिकारीगण माता-पिता को अपने बच्चों को निरोधक टीके लगवा लेने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, क्योंकि ढील देने से यह बीमारी उभड़ सकती है। भारत में तो डिपथीरिया-निरोधक टीके लगाने के इस सरल तरीके के सार्वजनिक पैमाने पर अपनाने की और भी अधिक आवश्यकता है। यह टीका बच्चे को तीन महीने का हो जाने के बाद या उसके बाद किसी भी समय हर महीने के अंतर पर तीन बार दिया जाता है। इसी इनजेक्शन के साथ-ही-साथ मिलाकर कुक्कुर खांसी और टिटेनस-विरोधी टीके भी दिये जा सकते हैं। इस तरह यह एक ऐसा निरोधक टीका हो जाता है, जो बच्चे को इन तीनों बीमारियों से रक्षा करता है।

कुक्कुर खांसी या काली खांसी (हूपिंग कफ)

यह बच्चों को होनेवाली एक आम बीमारी है। अत्यंत ही संक्रामक होने के कारण एक ही महल्ले के कई बच्चों को एक साथ या एक-के-बाद-एक करके लग जाती है। इसकी छूत (विशेष रूप से प्रारंभिक अवस्था में) खांसते समय मुंह से निकले थूक की बूंदों से फैलती है। बीमारी के पहले हफ्ते में यह मामूली खांसी की तरह ही होती है, लेकिन धीरे-धीरे दुखदायी खांसी के दौरे का समय बढ़ता जाता है, जिसमें बच्चे का मुंह लाल पड़ जाता है और उसे उलटी भी हो सकती है। जब वास्तविक 'हूक' उठती है, तो बच्चा खांसने के बाद सांस लेने के लिए कांखता और कराहता है। कुछ बच्चों को यह इतने जोर से नहीं होती कि वह उलटी होने अथवा हूक उठने तक की अवस्था तक पहुंचे।

कुक्कुर खांसी प्रायः ४ हफ्ते तक चलती है। अधिक गंभीर होने पर यह २-३ महीने तक भी चलती है। यह बीमारी

खासकर बहुत छोटे बच्चों में गंभीर भी हो सकती है। बेहद थकान हो जाना और निमोनिया हो जाने का अंदेशा इसके विशेष खतरे हैं। इलाज के लिए डाक्टर दवा देता ही है, लेकिन अगर बच्चे को बुखार न हो, तो खुली हवा अच्छी रहती है। रोगी बच्चे का दूसरे बच्चों के साथ खेलना या मिलना-जुलना बंद कर दीजिये। लगभग १ महीने तक उसे स्कूल नहीं भेजना चाहिए। अगर उलटियां अधिक हों, तो नियमित रूप से ३ बार के भोजन के बजाय थोड़ा-थोड़ा करके कई बार खाना देना चाहिए। प्रायः उलटी करने के ठीक बाद ही यदि खाना दिया जाये, तो फिर उलटी नहीं होती और बच्चा कुछ खा सकता है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि बच्चे को कुक्कुर खांसी के निरोधक टीके लगवाकर इससे बचाना और बाद में इससे पैदा होनेवाले दूसरे खतरों, परेशानी और मंहगी दवाइयों के खर्च से बचना अधिक अच्छा है।

फुन्सियों या चकतेवाले बुखार

इनमें चेचक (शीतला या बड़ी माता), छोटी माता (अचपड़ा) तथा खसरा आते हैं।

बड़ी माता—टीके लगाकर इस बीमारी को पूरी तरह से रोका जा सकता है, किंतु दुर्भाग्यवश भारत में आज भी यह बीमारी महामारी के तौर पर फैलती रहती है। इसका कारण यह है कि कुछ बच्चों को किसी किसी-न-किसी कारण टीके नहीं लग पाते और ज्यादातर समझदार तथा बड़े लोग भी नियमित अंतर से पुनः टीका लगवाने की परवाह नहीं करते। पहला टीका, जो प्रायः बच्चे के ६ महीने का हो जाने पर लगवाया जाता है, उसे आगामी कुछ वर्षों तक के लिए सुरक्षा प्रदान कर देता है। फिर बच्चे के पांच साल का हो जाने के बाद समय-समय पर फिर टीके लगवाते रहना

चाहिए, खासतौर से तब, जब इसकी महामारी फैले या इक्के-दुक्के लोग बीमार पड़ें। पहले टीके के बाद आनेवाले ४-५ दिन के बुखार के डर से कुछ माता-पिता आज भी बच्चों को टीका नहीं लगवाते। (दुबारा टीका लगाने पर बुखार नहीं आता है)। टीके की स्थानीय प्रतिक्रिया होती है। उसका स्थान फूल जाता है, लाल हो जाता है और उसके बाद उसमें पानी भर जाता है। पपड़ी बनने के बाद यह ठीक हो जाता है। जबतक यह प्रतिक्रिया न हो, पहला टीका सफल नहीं माना जाता है। जो माता-पिता अपने बच्चों को टीका लगवाने से इन्कार करते हैं, या इसे बाद के लिए टालते हैं, वे ठीक नहीं करते, क्योंकि जब किसी दूसरे बच्चे या पुरुष को चेचक निकली हो, तो छूत से इस बीमारी के लगने का बड़ा अंदेशा रहता है। साथ ही इसका परिणाम कुरूपता, मृत्यु या आंखों की ज्योति का चला जाना (जब चेचक के फफोले आंख में भी निकल आयें) तक कुछ भी हो सकता है। बच्चे को ३ से ६ महीने तक की आयु के भीतर टीका लगवाना सबसे अच्छा है, क्योंकि छोटे बच्चों में टीका लगवाने की प्रतिक्रिया सबसे कम होती है। लेकिन अगर बच्चे की तबीयत खराब हो, या उसे कोई चर्म रोग हो, तो टीका लगाना कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है।

चेचक में दाने बुखार के २-३ दिन बाद निकलते हैं। पहले ये चेहरे पर मुंहासे-जैसे दानों की तरह निकलते हैं, इसके बाद हाथ-पैरों पर निकलते हैं। आमतौर पर छाती और पीठ पर ये बहुत कम रहते हैं। कुछ दिनों में इन दानों में पानी-सा तरल पदार्थ भर जाता है, जो बाद में मवाद बन जाता है। अंत में इन पर काली पपड़ी पड़ जाती है और ये ठीक हो जाते हैं। खतरनाक मामलों में दाने अलग-अलग न रहकर मिल जाते हैं और लक्षण भी अधिक गंभीर होते हैं। चेचकवाले बच्चे को जबतक पपड़ी पूरी तरह

से न झड़ जाये, दूसरे बच्चों तथा स्वस्थ लोगों से एकदम अलग रखना चाहिए।

छोटी माता (चिकेन पाक्स)—हालांकि इसके दाने भी बड़ी माता-जैसे ही होते हैं, किंतु यह दूसरे कीटाणुओं से होती है। टीका लगवाकर भी इससे सुरक्षा नहीं प्राप्त की जा सकती है। आधुनिक विज्ञान इससे बचने के उपाय अभी तक नहीं खोज सका है। बीमार को दूसरों से अलग रखकर ही इससे बचाव किया जा सकता है। खुशकिस्मती से यह एक बहुत मामूली बीमारी ही है।

खसरा (मीज़िल्स)—यह एक बहुत ही संक्रामक रोग है, जो खासकर बच्चों को अधिक होता है। इसके प्रारंभिक लक्षण बुखार या जुकाम के साथ हरारत, नाक बहना, आंखों में पानी आना और खांसी आादि हैं। इसकी वजह से शुरू में लोगों को मामूली जुकाम या बुखार का ही संदेह होता है। दाने प्रायः बीमारी के चौथे दिन निकलते हैं और बुखार सबसे अधिक दाने निकलने के पहले ही रहता है, लेकिन उसके बाद तेजी से कम होने लगता है। दाने लाल और थोड़े उठे हुए-से रहते हैं, जो पहले चेहरे पर, और फिर छाती तथा हाथ-पैरों पर फैल जाते हैं। चेचक की तरह इनमें पानी नहीं भरता तथा फफोले भी नहीं उठते। पांच या छः दिन में दाने गायब होने लगते हैं, तथा अंत में उनका कुछ भी निशान बाकी नहीं रहता।

इस बीमारी को रोकने का उपाय क्या है? सर्वप्रथम, आपके बच्चे को अगर जुकाम है, या उसकी नाक बह रही है, या हरारत है और आंखों से पानी आ रहा है, तो उसे स्कूल मत भेजिये और न दूसरे बच्चों के साथ खेलने दीजिये, क्योंकि खसरा में दूसरों को छूत लगने का सबसे अधिक खतरा दाने निकलने के पहले ही रहता है। लेकिन अगर यह मालूम हो कि बच्चे को छूत लग ही गई है, तो या तो इस

आशा में कि बीमारी हलकी ही रहेगी, आप बच्चे को किसी खास इलाज के बिना औरों से अलग अकेला करके रख सकते हैं, लेकिन अगर बच्चा बीमार और कमजोर है, या किसी बीमारी से ठीक हो रहा है, तो डाक्टर की राय पर ही चलिये। मुमकिन है, डाक्टर उसे, यदि उपलब्ध हो, तो—गामा ग्लोबुलीन (यह मनुष्य के रक्त का ही एक अंश होता है) देकर बीमारी हलकी करने की या रोकने की कोशिश करे।

खसरा एक खतरनाक बीमारी है, क्योंकि इससे कई पेचीदगियां पैदा हो सकती हैं, जैसे निमोनिया और कान की सूजन। सौभाग्यवश आधुनिक विज्ञान इन पेचीदियों को रोक सकता है और इनका इलाज भी संभव है। पर दुर्भाग्यवश भारतवर्ष में पीढ़ियों से यह धारणा चली आ रही है कि चेचक और खसरा में कोई दवा नहीं देनी चाहिए। खसरा में ऐसी धारणा रखने का मतलब निश्चय ही बीमारी के दौरान भारी खतरा उठाना है।

गलसुए या कनफेर (मंप्स)—इस रोग का मुख्य लक्षण कान के सामने और नीचे जो पाचन रस की ग्रंथियों (सैलाइवरी ग्लैंड्स) होती हैं, उनकी सूजन है। इसके साथ प्रायः बुखार, शिथिलता और चबाने या निगलने में दर्द होता है। बीमारी लगभग दस दिन तक चलती है। इसके कोई निरोधक टीके आदि नहीं हैं। बच्चे को लगभग १५ दिन तक अलग करके रखना आवश्यक है।

मोतीझरा या मियादी बुखार (टायफायड)—इस ज्वर और इससे उत्पन्न कमजोरी का कारण एक प्रकार के कीटाणु हैं। छूत मरीज से मरीज को, अथवा उन लोगों से, जो इससे मुक्त हो चुके हैं, किन्तु कीटाणुओं को अभी भी मल-मूत्र के द्वारा निष्कासित करते हैं, प्राप्त होती है। ऐसे व्यक्ति रोग के कीटाणुओं के 'मानवीय वाहक' कहलाते हैं। जब ऐसे व्यक्ति भोजन बनाते हैं या छूते हैं, तो जो कीटाणु उनके नाखूनों और

उंगलियों पर शौच के समय लग जाते हैं, वे भोज्य पदार्थों में भी पहुंच जाते हैं और इस प्रकार दूसरे व्यक्तियों तक प्रवेश पा जाते हैं। मक्खियां इन कीटाणुओं को फैलाने में विशेष सहायक होती हैं। वे मल-मूत्र पर बैठने के बाद घरों में खुले रखे भोजन, दूकानों में रखी मिठाइयों और फेरी से बेची जानेवाली अन्य खुली वस्तुओं पर बैठती हैं। इसी प्रकार बाजार में बिकनेवाली आइसक्रीम भी, यदि दूध उबाला न गया हो, या शक्कर मक्खियों से सुरक्षित न रखी गई हो, तो छूत-ग्रस्त हो जाती है।

भारत में, दुर्भाग्यवश, यह बीमारी बहुत फैली हुई है। लगभग पचास वर्ष पूर्व पश्चिमी देशों में भी हालत ऐसी ही खराब थी, लेकिन अब स्वच्छता-संबंधी आदतों तथा मल-मूत्र विसर्जन के प्रबंध और मानवीय वाहकों को खोज निकालने और उनके इलाज आदि के कारण परिस्थिति में काफी सुधार हो गया है। इक्के-दुक्के रोगी वहां अब भी होते हैं, पर इतने से भी वहां के समाचार पत्रों और जनता में बड़ी खलबली मच जाती है तथा छूत के स्रोत को पकड़ने के लिए तुरंत भारी प्रयत्न शुरू कर दिये जाते हैं। मोतीझरा का टीका (टाइफायड वैक्सीन) लगाकर इस बीमारी को रोका जा सकता है, लेकिन चूंकि इससे बचाव केवल एक वर्ष तक के लिए ही होता है, अतः इसका प्रति वर्ष, या कम-से-कम जब रोग फैलने की संभावना हो, तब, लेना आवश्यक है।

अगर बुखार कुछ दिन या उससे अधिक लगातार चलता रहे और साथ में सरदी, दाने या कोई और खास कारण (फोड़ा आदि) न हो, तो मोतीझरा का संदेह किया जाता है। निदान की पुष्टि खून की जांच करके की जा सकती है। यदि बच्चे की सुश्रूषा घर पर ही की जा रही हो, तो घर के दूसरे व्यक्तियों को इस बीमारी से बचाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। चेचक, खसरा या डिपथीरिया-जैसी दूसरी

बीमारियों से भिन्न इसके कीटाणु मल और मूत्र से भी निष्कासित होते हैं। अतः मल-मूत्र बेड-पेन या किसी अन्य बर्तन में इकट्ठा करना चाहिए और डाक्टर के आदेशानुसार उसमें फौरन फिनाइल-जैसी किसी कीटाणुनाशक दवा मिलाकर फ्लश द्वारा या मल-विसर्जन के अन्य किसी सुविधाजनक तरीके से फेंक देना चाहिए। जो व्यक्ति बच्चे को या उसके मल के बर्तन को छूता है, उसे उसके तुरंत बाद अपने हाथ साबुन और पानी से धोने चाहिएं और हाथ कीटाणुनाशक घोल में डालकर भी साफ करने चाहिएं। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को रोकथाम के लिए फौरन निरोधक टीका ले लेना चाहिए। पहले मरीज को बीमारी के दौरान बहुत ही अल्प आहार दिया जाता था; किंतु अब डाक्टर दूध और फेंटे हुए अंडे के अलावा आसानी से पच सकनेवाली चीजें, जैसे चावल की कांजी, दाल का पानी, फल आदि भी खाने की अनुमति दे देते हैं।

बाल पक्षाघात (पोलियोमायलाइटिस)—यह अनिश्चित ज्वर की थोड़े ही समय तक चलनेवाली एक बीमारी है, जिसके बाद शरीर की कुछ मांसपेशियों को लकवा लग जाता है। इसके परिणामस्वरूप बच्चा एक या दोनों हाथों या पैरों अथवा किसी मांसपेशी विशेष से कार्य करने के अयोग्य हो जाता है। यह लकवा धीरे-धीरे हफ्तों या महीनों के बाद ठीक हो जाता है। लकवा लगी हुई पेशियां किस हद तक ठीक हो सकेंगी, यह नहीं कहा जा सकता, और अबतक किसी दवा का इस पर असर होता नहीं मालूम हुआ है। बीमारी की चरम अवस्था की समाप्ति पर किसी योग्य डाक्टर द्वारा बताई हुई कसरतों और मालिश से ठीक होने में सहायता मिलती है। इस बीमारी ने यूरोप और अमरीका में, जहां हाल के वर्षों में इसने एक महामारी का रूप ले लिया है, काफी ध्यान आकर्षित किया है। सौभाग्यवश

भारतवर्ष में इसका प्रकोप अधिक नहीं है। हाल ही में इसकी रोकथाम के लिए एक निरोधक टीका भी खोज निकाला गया है। यह सफलता आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के आश्चर्यों में से एक मानी जाती है। इसके लिए इसके कीटाणु का, जो इतना छोटा होता है कि सामान्य खुर्दबीन से भी देखा नहीं जा सकता, बंदर के कुछ अंदरूनी अंगों में प्रवेश कराकर उसकी इस प्रकार संख्या-वृद्धि कराई जाती है कि मनुष्य में टीके की तरह प्रविष्ट कराने पर वह हानिरहित हो जाता है। फिर मनुष्य शरीर इस कीटाणु का प्रतिरोधक (एंटीडोट) उत्पन्न कर देता है। किंतु यह याद रखना चाहिए कि यह टीका इसके विरुद्ध एक रोक भर है—रोग शुरू हो जाने के बाद उसकी दवा नहीं।

संक्रामक चर्म रोग

बचपन में कुष्ठ रोग—बच्चे को यह रोग कुष्ठ रोग के कीटाणुओं की छूत से होता है, जो उसके शरीर में किसी वयस्क कुष्ठ रोगी के लंबे और निकट संपर्क से चर्म द्वारा प्रवेश पा जाते हैं। साधारण जनता को इस बात का ज्ञान नहीं है कि भारत में, और विशेष रूप से दक्षिण भारत में, कुष्ठ रोग कितना व्यापक है। इस रोग के कारण होनेवाली बड़ी गांठें पड़ने या विरूपता आने में (जो प्रायः सड़कों पर भिखारियों में दिखती हैं) कई वर्ष लग जाते हैं। वस्तुतः यह विरूपता उन बच्चों में, जिन्हें इसकी छूत लग भी चुकी है, दिखाई नहीं देती, बस हलके लाल या तांबिए रंग के चित्ते या धब्बे पड़ जाते हैं और साथ में शायद खाल भी कुछ मोटी हो जाती है। धब्बे मुख्यतः चेहरे पर ही नजर आते हैं। चूंकि यह बीमारी भारत में, खासकर दक्षिण भारत में, बहुत अधिक व्यापक है और चूंकि आरंभ में इसका इलाज भी बहुत प्रभावी होता है और अगर जल्दी ही निदान

हो जाये, तो बीमारी एकदम रोकी जा सकती है, इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि माता-पिता बच्चे की चमड़ी पर किसी तरह के धब्बे को देखते ही, डरने के बजाय फौरन किसी डाक्टर से सलाह लें। इस बीमारी का डर और इसके प्रति हेय सामाजिक दृष्टिकोण बदलना आवश्यक है। बच्चे को इसकी छूत बच्चे की देखभाल करनेवाले नौकर अथवा घर के ही किसी सदस्य से, जिसकी बीमारी पता न चल सकी हो, लग सकती है। बच्चे की त्वचा बहुत मुलायम होती है और उसमें कीटाणु आसानी से प्रवेश पा सकते हैं, और यह बीमारी अक्सर बचपन में बिना पता चले ही शुरू हो जाती है। इस बीमारी की रोकथाम के लिए माता-पिता दो काम कर सकते हैं—एक तो यह कि यदि घर के किसी व्यक्ति को कुष्ठ रोग है, तो बच्चे को उसके साथ न सोने दिया जाये तथा उसके संपर्क में न आने दिया जाये। दूसरे, बच्चे की देखभाल के लिए नौकर रखें, तो कुष्ठ रोग के लिए डाक्टर से उसकी जांच करवा लें।

खुजली (स्केबीज)—बच्चों में यह बीमारी आमतौर पर पाई जाती है। यह एक छोटे-से कीड़े 'इच माइट' के कारण होती है, जो चमड़ी के नीचे ही रहता है और इतना सूक्ष्म होता है कि कोरी आंख से तो नहीं, पर खुर्दबीन की सहायता से अवश्य देखा जा सकता है। इससे बहुत खुजली होती है, जो रात को बढ़ जाती है और खुजली के स्थान पर पपड़ी के साथ उठे दाने और लगातार खुजली की वजह से बने हुए निशान भी दिखते हैं। पपड़ी और दाने मुख्यतः कलाइयों, उंगलियों के बीच के भाग में और गुप्तांगों के पास पाये जाते हैं। कभी-कभी खुजाने से मवाद पैदा करनेवाले कीटाणु पहुंचकर मवाद भी पैदा कर देते है। यह बीमारी एक व्यक्ति से दूसरे को, संसर्ग द्वारा तथा कपड़ों और बिस्तरों के द्वारा पहुंचती और बहुत जल्दी फैलती है। जिस बच्चे को खुजली हो, उसे

स्कूल नहीं जाने देना चाहिए। सही इलाज से यह कुछ दिनों में अच्छी हो जाती है। अगर घर में एक बच्चे को खुजली हो जाये, तो परिवार के सभी सदस्यों की खुजली के लिए जांच, और यदि आवश्यक हो, तो इलाज होना चाहिए, क्योंकि जब यह एक बच्चे को होती है, तो दूसरे व्यक्तियों को भी संपर्क से लग सकती है।

दाद (रिंगवर्म)—यह कई प्रकार की फुंगियों (सड़न या खमीर पैदा करनेवाले जीवाणु) द्वारा होता है। इससे शरीर पर गोलाकार पतली परतें और उठे हुए दानेदार किनारे बन जाते हैं, जिनमें खुजली उठती है। अगर यह सिर पर हो, तो लाल चकते बन जाते हैं, जिनमें परतें होती हैं। इन चकतों में बाल छोटे, रूखे और आसानी से झड़ जानेवाले होते हैं। यह बीमारी बच्चों में संपर्क और उंगलियों द्वारा, जिनसे वे खुजाते हैं, फैलती है, लेकिन इलाज करने से जल्दी अच्छी हो जाती है।

इंपैटीगो—इस बीमारी में छोटे-छोटे दाने या फुन्सियां बन जाती हैं, जिनकी जड़ लाल होती है। फुन्सियों में मवाद भरा होता है। फूटने पर ये पीले पपड़ीदार घाव बना देती हैं। पुरानी फुन्सियों के नजदीक ही नई फुन्सियां उठती रहती हैं और बड़ी होती जाती हैं। ये मुख्य रूप से चेहरे, पैर और अन्य स्थानों पर होती हैं, क्योंकि खुजाने से हाथों के जरिये कीटाणु वहां पहुंच जाते हैं। दूसरे बच्चों को इसके रोगी के संपर्क में नहीं आने देना चाहिए। उसके तौलिया, कपड़े तथा बिस्तर से भी कीटाणु फैलने की संभावना रहती है, अतः उन्हें भी दूर रखिये। डाक्टर से अविलंब सलाह लेनी चाहिए। लापरवाही से बीमारी बढ़ती है। इंपैटीगो के कुछ मरीज बच्चों में कीटाणुओं के घाव से उसके गुर्दों तक पहुंच जाने से एक खतरनाक पेचीदगी—गुर्दे की सूजन—पैदा हो सकती है।

: ७ :

बच्चों में क्षय-रोग

दुर्भाग्य से क्षय (तपेदिक, टी०बी०) भारत में एक बहुत ही व्यापक रोग है। जैसाकि सर्वविदित है, यह रोग एक प्रकार के कीटाणुओं (ट्यूबरकल-बेसिलाई) के कारण होता है, जो श्वास लेते समय वायु के माध्यम से, अथवा गाय के दूध के जरिये (कुछ गायें छूतग्रस्त होती हैं और इस रोग का कोई बाह्य लक्षण प्रकट नहीं करतीं; उनके दूध में भी ये कीटाणु चले जाते हैं।) शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। भारत में नीरोग शरीर में इस रोग के कीटाणुओं के प्रविष्ट होने के दो मुख्य माध्यम हैं :

१. जब क्षय का रोगी, जिसके फेफड़ों में यह रोग सक्रिय रूप में विद्यमान है, ऐसे स्थान पर खांसता है, जहां दूसरे नीरोग लोग उपस्थित हों, तो उसके थूक के कणों द्वारा इस रोग के कीटाणु आस-पास के नीरोग व्यक्तियों में श्वास लेते वक्त फेफड़ों में प्रवेश कर जाते हैं।

२. खांसने के बाद क्षय का रोगी बलगम को लापरवाही से इधर-उधर थूक देता है, जिससे क्षय के कीटाणु हवा तथा धूल में मिल जाते हैं। सांस के साथ जब वे हवा तथा धूल-कण नीरोग व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट होते हैं, तो उसे भी रोगी बना सकते हैं।

इस प्रकार से प्रविष्ट रोग के कीटाणु प्रत्येक नीरोग व्यक्ति को रोगी नहीं बना देते। यह पता लगाने के लिए कि किसी व्यक्ति के शरीर में इस रोग के कीटाणु मौजूद हैं या

नहीं, एक विशेष परीक्षण किया जाता है, जिसे 'ट्यूबरक्यूलीन टैस्ट' कहते हैं। इस परीक्षण के लिए इस रोग के मरे हुए कीटाणुओं से बनाये द्रव को बहुत-ही थोड़ी मात्रा में हाथ की चमड़ी में इनजेक्शन द्वारा पहुंचाया जाता है। २-३ रोज बाद उसकी स्थानीय प्रतिक्रिया देखकर यह जाना जा सकता है कि किन व्यक्तियों के शरीर में कीटाणु विद्यमान हैं।

चूंकि भारत में क्षय रोग बालिगों में बहुत व्यापक है, इसलिए बालपन के क्षय-रोग का भय भी दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है। हाल ही के कुछ बरसों में तो इसका प्रसार और भी अधिक हो गया है, यद्यपि लोक स्वास्थ्य अधिकारियों (नगरनिगमों, नगरपालिकाओं तथा लोक स्वास्थ्य विभागों) के आंकड़ों को देखें, तो उनसे क्षय-रोग के कारण मृत शिशुओं की संख्या इतनी अधिक नहीं लगेगी। इसका कारण यह है कि बच्चों में सक्रिय क्षय-रोग के लक्षण खांसी, बलगम अथवा थूक में खून निकलना आदि नहीं होते (जैसाकि आमतौर पर बालिगों में होता है)। बच्चों में इस रोग के लक्षण या तो खतरनाक और भयंकर अकड़न (ऐंठन), अचेतनता तथा कीटाणुओं द्वारा मस्तिष्क के आक्रांत होने से उत्पन बुखार में प्रकट होते हैं या ऐसे दौरों में, जिनसे हड्डियां तथा जोड़ पंगु हो जाते हैं। पहले प्रकार के कारण हुई बाल-मृत्यु को ऐंठन अथवा बुखार के कारण मृत्यु के अंतर्गत ही दर्ज किया जाता है। इसका फल यह होता है कि भारत में क्षय-रोग के कारण काल-कवलित शिशुओं की सही संख्या ज्ञात नहीं हो पाती। भारत के किसी भी अस्पताल में जाकर यह देखा जा सकता है कि कितनी बड़ी संख्या में बच्चे मस्तिष्क के या हड्डियों के या जोड़ों के क्षय से पीड़ित हैं।

इसके विपरीत पश्चिमी देशों में आज यह रोग लुप्त-प्राय: हो चुका है; यद्यपि इस शताब्दी के प्रारंभ में वहां पर भी स्थिति ऐसी ही खराब थी। भारत में ऐसी खराब स्थिति का

कारण यह है कि कोई २५ प्रतिशत बच्चे ६ वर्ष से भी कम उम्र में ही क्षय के कीटाणुओं से ग्रस्त हो जाते हैं। इस छूत का कारण या तो उनके संपर्क में रहनेवाले घर के ही किसी व्यक्ति को सक्रिय क्षय-रोग का होना है; या सड़क की धूल, जो ऐसे रोगियों के इधर-उधर थूक देने के कारण इस रोग के कीटाणुओं से लदी रहती है। वह बच्चा, जिसने इस रोग के कुछ कीटाणुओं को सांस अथवा मुंह द्वारा अपने शरीर में प्रवेश दे दिया है, अकसर शुरू-शुरू में इस रोग के कोई विशेष लक्षण नहीं प्रकट करता, सिवा इसके कि कभी-कभी उसे कुछ दिनों के लिए अनिश्चित-सा बुखार रहता है। वयस्क लोगों के समान उसे न ज्यादा खांसी होती है, न बहुत बलगम ही आती है। न थूक के साथ खून आता है। इससे घर के लोग तो क्या, कभी-कभी डाक्टर भी यह नहीं सोच पाते कि इस बच्चे को क्षय के कीटाणुओं ने ग्रस्त कर रखा है।

कुछ महीनों के बाद, अचानक ही, धीरे-धीरे बच्चे के मस्तिष्क अथवा सारे शरीर में इन कीटाणुओं के आक्रमण के खतरनाक लक्षण प्रगट होते हैं, जो फेफड़ों में केंद्रित एक छोटे-से केंद्र से निकलकर खून ले जानेवाली नाड़ियों द्वारा सारे शरीर तथा मस्तिष्क में फैल जाते हैं। ऐसी अवस्था में माता-पिता बच्चे को लेकर फौरन ही अस्पताल दौड़ते हैं और वहां पर कीमती-से-कीमती दवाइयों द्वारा लगातार इलाज के बाद भी ऐसे बच्चों के, जो मस्तिष्क के आक्रांत होने के कारण अचेतनता अथवा ऐंठन की अवस्था में हैं, ठीक होने की संभावना कम ही रहती है। भारत में सभी जगहों पर होने-वाली ऐसी सामान्य शोकपूर्ण दुर्घटनाओं के बावजूद जनता अभी तक यह बात नहीं समझ पाई है कि इस समस्या का समाधान न तो कीमती दवाइयां हैं और न रोग के प्रारंभ में ही उसे जान लेना है। इस समस्या का समाधान तो घर में तंदुरुस्त बच्चे को रोगी से पूर्ण रूप से अलग रखना अथवा

ऐसे ही दूसरे निरोधात्मक उपायों को काम में लाना है।

बच्चा आसपास के वातावरण से भी ये कीटाणु ग्रहण कर सकता है, क्योंकि ऐसे कई सक्रिय रोगी होते ही हैं, जो इन कीटाणुओं को खांसने के साथ हवा में छोड़ते रहते हैं तथा सड़कों पर इधर-उधर थूककर इन्हें फैलाते हैं। बी० सी० जी० का टीका बच्चों को इस रोग से बचाने का एक और उपयोगी उपाय है। प्रत्येक बच्चे को यह टीका शिशु-अवस्था में ही लगवा देना चाहिए। जन्म के कुछ दिनों बाद ही यह लगवा दिया जाये, तो और भी अच्छा, क्योंकि आंकड़ों से यह मालूम कर लिया गया है कि क्षय के कीटाणुओं से ग्रसित होनेवाला बच्चा जितना ही छोटा होगा, उसे मस्तिष्क का क्षय-रोग होने तथा कालग्रसित होने का खतरा भी उतना ही अधिक होगा। पश्चिम के कुछ देशों तथा रूस में तो बच्चों को पैदा होते ही बी० सी० जी० का टीका लगाने का नियम है।

भारत में माता-पिताओं को अपने बच्चों को क्षय से बचाने के लिए निम्नलिखित सावधानियां बरतनी चाहिएं :

१. ऐसे मकान में, जिसमें कोई व्यक्ति सक्रिय रूप से क्षय का मरीज है तथा हमेशा खांसता रहता है, बच्चों को नहीं रखना चाहिए। यह बात मां पर भी लागू होती है। यदि ऐसे रोगी को घर से हटाना संभव न हो, तो बच्चे को जन्म के बाद बी० सी० जी० का टीका लगवाकर रोग से अभिरक्षित करवाकर किसी संबंधी के यहां भिजवा देना चाहिए। मतलब यह कि शुरू में ही बच्चे पर होनेवाले क्षय के कीटाणुओं के भारी आक्रमण को टालना चाहिए, क्योंकि कम उम्र में ही इस रोग के शरीर में घुस आने का अधिक खतरा रहता है।
२. बच्चे को दूध हमेशा उबालकर ही पिलाना चाहिए तथा उसे जमीन पर गिरी हुई चीजों को मुंह में

नहीं डालने देना चाहिए।

३. यदि बच्चे के लिए आया अथवा नर्स रखी जाये, तो उसकी डाक्टर से पूरी जांच करवा लेनी चाहिए (खासतौर पर उसकी छाती का एक्स-रे) कि कहीं वह छूतवाले क्षय-रोग से पीड़ित तो नहीं है।

४. घर पर यदि कोई रोगी न भी हो, तो भी शैशवावस्था से ही बच्चों को बी० सी० जी० का टीका लगवा देना चाहिए, क्योंकि हमारे यहां रोग के कीटाणु आस-पास के वातावरण में भी आ सकते हैं। यदि बच्चे को बी० सी० जी० का टीका नहीं लगवाया गया है और न ही ऊपर लिखे अन्य निरोधात्मक उपायों पर अमल करवाया गया है, तो समय-समय पर अपने बच्चों की डाक्टर द्वारा जांच करवाते रहना अत्यंत ही आवश्यक है, जिससे यह मालूम पड़ जाये कि बच्चों को कहीं इन कीटाणुओं ने तो ग्रसित नहीं किया है।

इस प्रकार का परीक्षण बी० सी० जी० के टीका लगानेवाले केंद्रों अथवा डाक्टरों के यहां हो सकता है। इस परीक्षण में एक टीका लगाया जाता है, जिससे किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया, मामूली बुखार तक—नहीं होती। टीके के स्थान पर कहीं-कहीं 'जेली' अथवा 'पैच टैस्ट' की सुविधा भी उपलब्ध रहती है और वही काम में लाई जाती है। अगर बच्चे पर यह परीक्षण 'पाजिटिव' निकलता है, तो इससे घबराइये मत। हां, उसकी पढ़ाई-लिखाई व कुछ दवाइयों की व्यवस्था अपने डाक्टर की सलाह के अनुसार कीजिये। यदि किसी प्रकार के गंभीर लक्षण प्रकट नहीं होते हैं और न इस बात का पता चलता है कि कीटाणु शरीर के दूसरे भागों में फैले हैं, तो परीक्षण के पाजिटिव परिणाम के बावजूद यह आवश्यक नहीं कि यह रोग गंभीर रूप में प्रकट हो।

क्षय-रोग का दूसरा प्रकार गिल्टी का क्षय (ग्लेंड-ट्यूवरक्यूलिसिस) है। यह भी अपने देश में आम है। यह रोग गले, वगल अथवा जांघ में गिल्टी के रूप में प्रगट होता है। यदि इलाज जल्दी नहीं प्रारंभ किया जाये, तो यह गिल्टी फूट जाती है और उसमें से पीव-जैसा स्राव वहता है, जिससे अंत में घाव के भद्दे निशान रह जाते हैं। पेट का क्षय कीटाणु मिला दूध पीने अथवा जमीन पर पड़ी ऐसी चीज को, जो कीटाणुओं से भरी हो, मुंह में रखने से होता है। इसके लक्षण हैं पेट का थोड़ा फूलना, वुखार आना, वजन कम होना, आदि। किसी भी प्रकार का जरा भी शक होने पर फौरन ही अपने डाक्टर से सलाह लेनी चाहिए।

: ८ :

कुछ और सामान्य बाल-रोग

ऐंठन (कानवलज़न)—बच्चों को कभी-कभी ऐंठन की बीमारी हो जाती है, अर्थात सारा शरीर या शरीर के कुछ भाग थिरकन अथवा झटकों से कांपने लगते हैं। श्वास भारी हो जाता है, बेहोशी-सी आने लगती है, आंखें फिर जाती हैं तथा दांत भिंच जाते हैं। साथ में मुंह से झाग भी निकलने लग सकता है। ऐंठन से पीड़ित बालक की दशा देखनेवालों के लिए तो भयानक होती ही है, बच्चे की तकलीफ देखकर मां का भी बुरा हाल हो जाता है। लेकिन अधिकतर मामलों में यह अपने-आप ही ठीक हो जाती है और खतरनाक नहीं होती। दौरे के समय या उसके फौरन बाद डाक्टर न भी मिले, तो भी घबड़ाना नहीं चाहिए। बच्चों में ऐंठन का सबसे सामान्य कारण बुखार ही होता है। अतः सबसे पहले सिर पर बरफ की थैली, या बरफ न मिले, तो यू-डी कोलोन या स्पिरिट मिले हुए ठंडे पानी में भीगा रूमाल बच्चे के सिर पर रखकर बुखार कम करने की कोशिश कीजिये। बच्चे के पास ज्यादा लोगों को न रहने दिया जाये, तो अच्छा है, क्योंकि उसे खुली हवा की आवश्यकता होती है। बच्चे की मां भी भीड़-भाड़ में अधिक उत्तेजित और परेशान हो उठती है। ऐसे अवसरों पर कुछ अन्य प्रचलित इलाज करना, जैसे दागना या माथे पर जलती बीड़ी अथवा सिगरेट रखना आदि अमानुषिक और बच्चे के लिए निश्चित रूप से हानिकारक है। किसी भी हालत में

ऐंठन कुछ मिनिटों में ही ठीक हो जाती है। कभी-कभी यह बार-बार भी आ सकती है और तब डाक्टर को मुंह से अथवा इनजेक्शन के जरिए शमनकारी औषध (सिडेटिव) देने की आवश्यकता पड़ सकती है। कुछ बच्चों को जहां किसी भी प्रकार के बुखार के साथ ऐंठन प्रारंभ हो सकती है, वहां औरों को काफी अधिक बुखार होने पर भी नहीं होती। कुछ बड़े बच्चों को बुखार के या अन्य किसी प्रत्यक्ष कारण के बिना ही बार-बार ऐंठन की शिकायत होती है। इसका कारण मिरगी का रोग हो सकता है। आजकल अनेक ऐसी दवाइयां उपलब्ध हैं, जो इन दौरों को रोक सकती हैं। ऐंठन कभी-कभी मस्तिष्क की सूजन से भी हो सकती है। उस हालत में ये दौरे बड़े गंभीर होते हैं।

अतिसार या दस्त (डायरिया)—भारत में दुर्भाग्यवश यह बीमारी बच्चों में बहुत आम है और २ महीने से १ वर्ष तक की उम्र के बच्चों की अकाल मृत्यु का यह एक प्रमुख कारण है। बच्चों में अतिसार की बीमारी अधिकतर उसके भोजन के जरिये उसके पाचन-संस्थान में कीटाणुओं के प्रवेश से होती है, अतः इस पुस्तक में इसी कारण बार-बार जोर देकर यह कहा गया है कि बच्चों को खिलाई जानेवाली चीजों को मक्खियों व गंदे हाथों से विशेष सावधानी के साथ बचाना जरूरी है और बच्चों के इस्तेमाल के बर्तन विकीटाणुकृत होने चाहिएं। अतिसार के अन्य कारण भी हैं। पहले साल-दो साल बच्चों की अंतड़ियां अत्यधिक संवेदनशील होती हैं और हो सकता है कि बच्चे की खुराक में अत्यधिक शक्कर होने, या ऐसी सब्जियों के होने से, जिन्हें बच्चा पचा नहीं सकता उनमें गड़बड़ी पैदा हो जाये, लेकिन सबसे खराब तरह के दस्त कीटाणुओं से ही होते हैं। बच्चों का सरदी से भी बचाव जरूरी है, क्योंकि दस्त इससे भी लग सकते हैं। कुछ प्रकार के दस्त मामूली होते हैं और शुरू में ही इलाज से आसानी से ठीक हो जाते हैं।

लेकिन अगर दस्त बिलकुल पतले और कई-कई बार होते हैं, या उलटी और बुखार भी साथ हैं, या बच्चा बहुत कमजोर हो गया है, तब स्थिति बहुत चिंताजनक होती है। इस प्रकार के दस्तों का मतलब यह है कि बीमारी कठिन और गहरी है। दस्त कितने ही मामूली प्रकार के क्यों न हों, डाक्टर की सलाह अवश्य लेनी चाहिए। डाक्टर न मिल सके, तो निम्न-लिखित सुझावों पर अमल किया जा सकता है:

स्तन-पान करनेवाले बच्चे का स्तन-पोषण जारी रखना चाहिए। बीमारी कठिन हो, तो उसे एक दिन केवल पानी पर रखा जाये, और उसके बाद पानी और उसके बाद स्तन-पान। तरल तथा ठोस खाद्य बंद कर दिये जायें। लंबी अवधि के दस्तों के दौरान मां का दूध बंद कर देना—यह सोचकर कि बच्चा उसे पचा नहीं पा रहा है और इससे उसे दस्त लग गये हैं—गलत है। इसके विपरीत बच्चा अगर गाय का दूध या डिब्बे का दूध ले रहा है, तो ऐसा दूध कम और पानी अधिक दीजिये। दस्त बहुत अधिक हों, तो एक-दो दिन के लिए दूध कतई बंद कर दीजिये, लेकिन ग्लूकोज के साथ पानी खूब दीजिये (३ औंस पानी में एक चाय का चम्मच, साथ में जरा-सा नमक भी)। बाद में बहुत-ही पतला दूध देना शुरू कीजिये। बच्चे को अगर काफी पानी पिलाया जा रहा है और वह उसका वमन नहीं करता, तो इस बात से मत घबराइये कि बच्चा कुछ दिन भूखा रहेगा।

यदि पतले दूध से बच्चा भूखा रहता है और रोता है, तो ऐसा दूध उसे दिन में कई बार भी दे सकते हैं। जैसे-जैसे बच्चे का पेट ठीक होता जाये और उसकी भूख बढ़ती जाये, वैसे-वैसे दूध की मात्रा भी बढ़ाते जाइये। बच्चे की खुराक में शक्कर कम करने से और दुग्ध-भोजन को अधिक पानी मिलाकर पतला करने से मामूली अतिसार में सुधार

लाया जा सकता है। दूध में चिकनाई भी कम करनी चाहिए। ऐसे बच्चे को चिकनाईरहित दूध (स्किम मिल्क) का पाउडर पानी की आवश्यक मात्रा में मिलाकर, या घर के जमे मक्खन निकले दूध की छाछ बनाकर किया जा सकता है। हो सकता है कि इतना कम भोजन देने से बच्चा भूखा और शायद अप्रसन्न भी रहे, लेकिन बच्चे को थोड़े दिन अप्रसन्न रखकर आप उसके दस्त बिगड़ने से रोक सकते हैं, जिसमें शायद बाद में आपको उसे कहीं लंबे अरसे तक भूखा और अप्रसन्न रखना पड़े।

बच्चों को दस्त लगने पर दक्षिण भारत में प्रायः अरारोट की कांजी (राब) देने का रिवाज है, और कुछ समय तक इसका देना ठीक भी हो सकता है, लेकिन यह अधिक समय तक बच्चे का एकमात्र भोजन नहीं रहना चाहिए; क्योंकि इसमें प्रोटीन बिलकुल नहीं होते हैं और अधिक समय तक केवल अरारोट की राब देने से बच्चे की पोषणहीनता और कमजोरी बढ़ जाती है।

अगर बीमारी अधिक कठिन और गंभीर हो, और उलटी के कारण कोई भी द्रव पेट में न ठहरता हो, तब शरीर में द्रव-खाद्य का इनजेक्शन आदि विशेष तरीकों द्वारा पहुंचाया जाना आवश्यक हो सकता है। यह किसी अस्पताल में ही संभव है। ऐसा करना कभी-कभी प्राण-रक्षा के लिए आवश्यक होता है।

मां का दूध पीनेवाले बच्चों को दस्त साधारणतः कम लगते हैं और यदि लगे भी, तो ऊपर का दूध पीनेवाले बच्चों से कम खतरनाक होते हैं। छोटे बच्चों में दस्त अधिक हानिप्रद हो सकते हैं, लेकिन दो वर्ष की आयु के बाद कम खतरनाक होते हैं; और उनके कम अवधि तक चलने की संभावना होती है। भारतवर्ष में बच्चों में दस्त लगने की बीमारी अधिक पाई जाती है, लेकिन सफाई के तरीकों

में सुधार और माताओं में बच्चों की देखभाल संबंधी शिक्षा और बच्चों के बर्तनों की बेहतर सफाई की शिक्षा तथा जानकारी से इसका प्रकोप कम हो जायेगा, जैसाकि पिछले वर्षों में पश्चिमी देशों में भी हुआ है। दस्त की बीमारी ठीक होने के बाद बच्चों के खान-पान की देखभाल बड़ी महत्वपूर्ण है। दस्तों के बाद बच्चे चिकनाईरहित दूध, आधी चिकनाई निकला (हाफ क्रीम) दूध, छाछ, अंडे की सफेदी आदि जैसी चीजें अधिक आसानी से पचा लेते हैं, लेकिन चिकनाई हज्म नहीं कर सकते।

अन्य बीमारियां

सरदी या जुकाम—सरदी या जुकाम बच्चों की एक बहुत ही आम बीमारी है। यह एक संक्रामक रोग है। यह धारणा कि जुकाम खट्टे संतरे के रस या तेल की मालिश से होता है, ठीक नहीं है। हो सकता है कि किसी ऐसे बच्चे को, जो तिल के तेल के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हो, मालिश के बाद कुछ छींकें आने लगें, पर ये जल्दी ही बंद हो जाती हैं।

जुकाम की शुरूआत ठंड या पैरों के भीगे रहने से हो सकती है। सरदी-जुकामवाले व्यक्तियों को बच्चे के नजदीक नहीं जाना चाहिए, क्योंकि इससे बच्चों को रोग की छूत लग सकती है। वैसे भी अगर किसी बच्चे को जुकाम हो, तो उसे स्कूल नहीं भेजना चाहिए और दूसरे बच्चों के साथ खेलने बाहर भी नहीं जाने देना चाहिए। जुकाम में बच्चे को इतने गरम कपड़ों से लाद देना कि उसे पसीना आने लगे और उसे खुली हवा से दूर रखना गलत है। यदि बच्चा अपनी नाक स्वयं साफ कर सकता है, तो उसे अपनी नाक हलके से खुद साफ करने दीजिये। जुकाम में बहती नाक को गले से नीचे नहीं उतारना चाहिए।

यदि बच्चे को संतुलित भोजन मिल रहा है, तो यह बात संदेहास्पद है कि अतिरिक्त विटामिन देकर जुकाम को रोका जा सकेगा। खुली हवा में चुस्त और सक्रिय रहन-सहन और ठंडे मौसम को झेलने की आदत से सरदी का प्रतिरोध करने की शक्ति अपने-आप उत्पन्न हो जाती है।

कान के रोग—कान के मामूली संक्रामक रोगों का संबंध जुकाम से ही होता है। कान में दर्द होने पर ऐसे छोटे बच्चे, जो बोल नहीं सकते, कान मलने लगते हैं और रोने लगते हैं। ऐसी हालत में कान में थोड़ा-सा कुनकुना तेल डालने और गरम पानी की थैली के सेक से आराम मिलता है। अब ऐसी बहुतेरी दवाइयां मिल जाती हैं, जो कान की ऐसी छूतों को जल्दी से ठीक कर देती हैं। हो सकता है कि कभी-कभी सरदी या कान की छूत लग जाने के बाद बच्चे कुछ दिन तक ठीक से सुन न सकें।

नेत्र-रोग—जुकाम के या अन्य कीटाणुओं से आंखों में मामूली छूत लग सकती है, जिससे सुबह के समय पलकें चिपचिपी और आंखें लाल हो जाती हैं। इसके लिए साफ और उबले पानी से धुले ड्रापर से डाक्टर द्वारा बताई गई दवा डालनी चाहिए। इसके पहले पानी में उबाली साफ रुई के फोहे को उबालकर ठंडे किये हुए पानी में डालकर उससे आंखों को साफ करना चाहिए।

टान्सिल और नाक के मस्से—ये नासिका के पीछे कंठ-द्वार पर स्थित मांसल पिंड हैं। ये ऐसी ग्रंथियां नहीं हैं कि इनसे पीछा छुड़ाने के लिए आपरेशन कराना ही पड़े। असल में ये ऐसे द्वारपाल हैं, जो शरीर की कीटाणुओं से रक्षा करते हैं। शहरों में, जहां धूल और कीटाणुओं की भरमार होती है, इन्हें ज्यादा काम करना पड़ता है, जिससे ये छूत खा जाते हैं और इनमें सूजन आ जाती है, जो प्रायः हमेशा बनी रहती है और बच्चे की तबीयत ख़राब रहने लगती है। ऐसी हालत

में आपरेशन किया जाये या नहीं, इस बात का निश्चय डाक्टर पर छोड़ देना चाहिए।

पेट का दर्द—इसके कई कारण हो सकते हैं। अधिकतर कारण साधारण होते हैं और कुछ गंभीर भी। अपचन, गले या पेट की छूत और मानसिक परेशानियां इसके सामान्य कारण है। यदि इसके साथ में बुखार भी हो, या दर्द लंबी अवधि से हो, तो डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए।

अम्होरियां और फोड़े—भारत में ये आम हैं, विशेष रूप से गरमी में। अम्होरियां छोटी-छोटी फुन्सियां-सी होती हैं, जिनके चारों ओर लाली-सी रहती है और प्रायः ये गले और कंधों पर होती हैं। इसमें करने की खास बात यह है कि बच्चे को ठंडा रखा जाये। पहनाने के लिए मामूली पतले वस्त्र का झबला काफी है या उसे कुछ भी न पहनाया जाये। कहा जाता है कि तेल की मालिश से इनकी तेजी कम हो जाती है। इसके लिए बच्चे के सारे शरीर पर तिल के तेल की मालिश और हल्दी तथा बेसन की उबटन मलकर उसे स्नान कराना चाहिए। स्नान के बाद शरीर पर कुछ चिकनाहट रहने दी जानी चाहिए।

फोड़े-फुन्सियों की शुरुआत छोटे-छोटे लाल दानों से होती है। शीघ्र ही इनमें मवाद भर जाता है। कई-कई फोड़े भी एक साथ उठ सकते हैं। इन्हें फौरन किसी डाक्टर को दिखाना चाहिए, क्योंकि हो सकता है कि कीटाणु रक्त द्वारा शरीर के दूसरे भागों में भी पहुंच जायें।

छाजन (एक्ज़िमा)—यह प्रायः चेहरे, सिर व कोहनी और घुटनों के चमड़े पर होता है। यह बीमारी बच्चों को कम ही होती है। इसके शुरू में चमड़ी लाल हो जाती है, लेकिन बाद में इस पर पपड़ी जम जाती है और गीली-सी दिखने लगती है। तेज साबुनों के प्रयोग से और खुजाने से यह रोग और बढ़ता है। इसे डाक्टर को दिखाना चाहिए।

कीड़े (वार्म्स)

भारत में और निकटवर्ती देशों में बच्चों के पेट में अकसर कीड़े होते हैं। कुछ कीड़े (राउंड वार्म) लंबे और भूरे रंग के होते हैं; कुछ (थ्रेड वार्म) छोटे और सफेद; हुक वार्म भी छोटे और सफेद होते हैं। टेप वार्म सफेद और बहुत ही लंबे होते हैं, जिनके छोटे-छोटे टुकड़े समय-समय पर दस्त के साथ निकलते रहते हैं।

राउंड वार्म (केंचुआ)—ये आंतों में पाये जानेवाले सबसे आम परजीवी कीड़े होते हैं। इनकी वजह से शिथिलता, स्वास्थ्य दौर्बल्य, भूख में कमी और पेट में दर्द, आदि शिकायतें रहती हैं। रोग के लक्षण इनकी संख्या पर भी बहुत-कुछ निर्भर करते हैं। कीड़े थोड़े हों, तो कोई विशेष तकलीफ नहीं होती, पर अधिक होने पर ये गंभीर हालत भी पैदा कर सकते हैं। इनकी छूत लगने के साधनों में कच्ची सब्जी, दूषित भोजन या पानी आदि प्रमुख हैं। जमीन पर गिरी हुई खाने की चीजें कीटाणुयुक्त हो सकती हैं।

चित्र ४१
(अ) राउंड वार्म, (ब) थ्रेड वार्म, (स) हुक वार्म

थ्रेड वार्म (चुन्ना)—ये छोटे, सफेद, और धागे की तरह पतले होते हैं। कोई चौथाई से आध इंच तक लंबे ये कीड़े काफी संख्या में पैदा होते हैं और दस्त में रेंगते हुए नजर आ सकते हैं। जिन बच्चों को ये कीड़े लग जाते हैं, उन्हें प्राय: गुदा-स्थान पर खुजली लगती है। रात्रि को यह कष्ट विशेष रहता है, क्योंकि तभी ये बाहर निकलकर गुदा-स्थान के बाहर या उसके निकट अंडे देते हैं। इससे बच्चे को जलन और बेचैनी होती है, जिससे उसकी नींद भी खराब होती है।
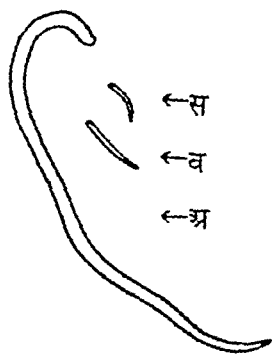
खुजाते समय इनके अंडे बच्चों के लंबे नाखूनों में लग जाते हैं और भोजन करते हुए नाखूनों द्वारा मुंह में पहुंच सकते हैं। साथ खेलनेवाले बच्चों को भी यह बीमारी ऐसी उंगलियों और नाखूनों की वजह से लग सकती है। खुजलाहट और बिगड़ी नींद के अलावा इनसे अनेक पाचनसंबंधी गड़बड़ियां भी हो सकती हैं। इन कीड़ों को निकालने के लिए डाक्टर तो दवा देंगे ही, इसके अलावा बच्चे के नाखून काटकर छोटे रखना आवश्यक है, ताकि खुजाने से कीड़ों के अंडे नाखूनों में लग न सकें। घर में एक बच्चे पर भी इन कीड़ों के पाये जाने पर यह आवश्यक है कि सभी बच्चों का इलाज करवाया जाये, क्योंकि उनको भी यही बीमारी लग जाने का डर रहता है।

चित्र ४२–टेप वार्म

हुक वार्म (कंटुआ कीड़ा)—ये बड़े बच्चों में, विशेष रूप से मैदानों में नंगे पैर चलनेवालों को होते हैं, क्योंकि इसके बच्चे चमड़े के जरिये शरीर में घुस जाते हैं।

टेप वार्म (फीता कीड़ा)—ये नापने के सफेद और मोटे-से टेप (फीते) की भांति होते हैं। इनके टुकड़े-टुकड़े ही दस्त के साथ निकलते रहते हैं। इनकी छूत कीटाणुओं से दूषित मांस खाने से लगती है।

इन सभी कीड़ों की छूत उचित इलाज से ठीक की जा सकती है।

यकृतशोथ (सिरोसिस)—भारत में यह दुर्भाग्यवश १ से ५ वर्ष तक के बच्चों में काफी पाया जाता है। बीमारी की शुरुआत में बच्चे में चिड़चिड़ापन, भूख कम लगना और थोड़ा-सा बढ़ा हुआ पेट, आदि लक्षण दीख सकते हैं। सच तो यह है कि भारत के कुछ भागों में तो इसका इतना डर है कि बच्चे के थोड़े बढ़े हुए पेट को देखकर ही (चाहे उसका

कारण कुछ और ही क्यों न हो) माता-पिता इस रोग के प्रचलित उपचार प्रारंभ कर देते हैं। रोग की बढ़ी हुई अवस्था में पेट में पानी (द्रव) के एकत्रित हो जाने से पेट पर सूजन-सी आ जाती है। साथ में पीलिया का होना भी संभव हो सकता है। बच्चे को अकसर हलका बुखार बना रहता है। आधुनिक वैज्ञानिक औषधियों की इतनी प्रगति के बावजूद इस रोग का कारण अभी तक अज्ञात है। तथापि इस रोग के संबंध में भारत में बहुत-सी भ्रांतियां फैली हुई हैं, जिन्हें भारत में चल रहे वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यों से दूर किया जा सकता है। इस रोग के लिए गाय-भैंस अथवा माता के दूध को दोष देने का कोई कारण नहीं। पेट कई और कारणों से भी बढ़ सकता है। बढ़े हुए यकृत (लिवर) अथवा पीलिया का भी हमेशा यही कारण नहीं होता। इस रोग में कमी-बेशी होती रहती है और कई रोगी बगैर किसी दवा के भी अपने-आप ठीक हो जाते हैं।

पौष्टिक आहार का अभाव

मैरास्मस (दुर्बलता जनित रोग)—यह बीमारी बहुत ही नन्हें शिशुओं को होती है। इसका मुख्य कारण खराब किस्म का तथा आवश्यकता से कम भोजन है। इससे बच्चा बहुत ही क्षीण तथा दुबला-पतला हो जाता है और उसके चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती हैं।

शरीर की सूजन और खाल का उतरना या कालापन—यह भोजन में प्रोटीन की कमी का नतीजा है। यह बीमारी गरीब परिवारों के बच्चों में आम है और यथेष्ठ भोजन और पोषण न मिलने से १ और ५ वर्ष के बीच होती है। इससे शरीर का विकास तो रुकता ही है, कभी-कभी मृत्यु तक हो सकती है। रोक-थाम के लिए यथेष्ट प्रोटीनयुक्त भोजन, जैसे, मूंगफली, दूध, मक्खन निकला दूध, दालें तथा

सोयाबीन, आदि लेना चाहिए।

रतौंधी तथा आंख के फोड़े—ये रोग अधिकतर वि
मिन 'ए' की कमी से होते हैं। यह रोग उन बच्चों को
अधिक होता है, जिन्हें विटामिन 'ए' युक्त भोजन (
गाजर, हरी सब्जियां, आदि) नहीं मिल पाता। विटामिन
की न्यूनता का जरा भी शक होते ही डाक्टर की राय ली
नहीं तो बच्चे की निगाह जाती रहने का अंदेशा है।

सूखा रोग—जिन बच्चों को विटामिन 'डी' युक्त भो
(शार्क या काड लिवर आइल, अंडे, वगैरा) या सूर्य
किरणों से मिलनेवाला लाभ नहीं मिलता, उन्हें यह बीम
हो जाती है। इस रोग में हड्डियां कमजोर और बेडौल
जाती हैं तथा मुड़ जाती हैं। बच्चा पीला व कमजोर
जाता है। उसकी छाती सिकुड़ जाती है, पेट बढ़ जाता है
उसके हाथ और पैर मुड़े हुए-से दिखने लगते हैं। बच्चों
मछली का तेल व सूर्य स्नान नियमित रूप से देते रह
इस रोग से बचाया जा सकता है।

स्कर्वी (शीताद)—उन बच्चों को होती है, जो कृ
पोषण पर होते हैं और जिन्हें विटामिन 'सी' नहीं मिलता
यह विटामिन नारंगी के रस, टमाटर, हरी सब्जियों, अ
में पाया जाता है। सूखा रोग की तरह स्कर्वी के लक्षण
बच्चे में ५ महीने से २ वर्ष तक की आयु में विकसित
हैं। बच्चे का स्वभाव चिड़चिड़ा हो उठता है तथा रोग
स्थान को छूने से वह रोने लगता है। प्रभावित अंश
जाता है तथा दर्द के कारण हिलाया-डुलाया नहीं
सकता।

बाल-बेरीबेरी—जिन इलाकों में बेरीबेरी फैलत
वहां स्तन-पोषण करनेवाले कुछ बच्चों में भी यह पाई ज
है। इनसे रोगी की आवाज भारी हो जाती है। हृदय कम
हो जाने के कारण बच्चा परेशान रहता है। इसने बच्चे

लिए माताओं को मिल के साफ किये हुए चावल के बजाय सेला या हाथ से साफ किये हुए चावल इस्तेमाल करना चाहिएं। विटामिन 'बी' देकर बच्चे तथा मां दोनों का उपचार किया जा सकता है।

चित्र ४३
बेडौल टांग

अन्य शारीरिक दोष

मुड़ी हुई या बेडौल टांग—यह जन्म से ही होती है और इसे 'क्लब फुट' भी कहते हैं। (चित्र ४३)। ऐसी स्थिति में डाक्टर से शुरू में ही सलाह लेनी चाहिए। यदि शुरू में ही खपच्ची या प्लास्टर आदि बांधा जाये, तो आगे चलकर बड़ी उम्र में शल्य चिकित्सा की जरूरत नहीं रहती।

चित्र ४४—अकड़े अंग

अकड़े अंग (स्टिफ लिंब)—इस रोग को डाक्टर मस्तिष्क जन्य स्नायुविक पक्षाघात कहते हैं। इसका इलाज यही है कि बच्चे को कसरतों तथा अंग-संचालन द्वारा धीरे-धीरे अपने अंगों के उपयोग और कार्य का प्रशिक्षण दिया जाये।
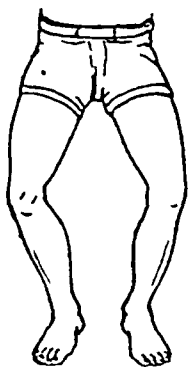
चित्र ४५
मुड़ी हुई टांगें

मुड़ी हुई टांगें—कुछ बच्चे जब चलना सीखते हैं, तो उनकी टांगें कुछ मुड़ी हुई होती हैं और इसका कोई खास महत्व भी नहीं है। (चित्र ४५)। बहुत अधिक मोड़ का कारण पैतृक या सूखा-जैसी विटामिन की कमीवाली बीमारी भी हो सकती है। इसमें डाक्टर
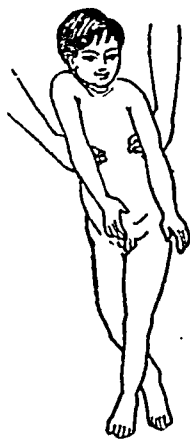
की सलाह ली जानी चाहिए।

रगड़ते घुटने (नाक नीज़)—कुछ बच्चों में, विशेष रूप से भारी वजन के बच्चों में, इसके होने की संभावना रहती है। इसमें दोनों घुटने एक-दूसरे के नजदीक होते हैं, किंतु टखने काफी दूर, जो चलने पर अंदर की तरफ मुड़ते हैं। साथ में विटामिन 'डी' की कमी से अगर ऐसे बच्चे की हड्डियां भी मुलायम हों, तो यह बीमारी जल्दी बढ़ जाती है तथा गहरी हो जाती है। जब बच्चा खड़ा होने और चलने लगता है, तो डाक्टर नियमित परीक्षणों से उसके टखनों और पैरों की जांच करता रहेगा, खासकर दूसरे वर्ष में। इसमें वह बच्चे को अंग ठीक करनेवाले विशेष प्रकार के जूते पहनाने, और

चित्र ४६
घुटने रगड़ना

यदि साथ में सूखा भी हो, तो अतिरिक्त विटामिन 'डी' तथा सूर्य का प्रकाश देने की राय देगा।

धंसे हुए कंधे—कंधों का धंसना और उनमें गोलाई आना शैशव के अंत तक आरंभ होता है। इसके कई कारण हैं, जैसे, उठने-बैठने का गलत तरीका, कंधों या रीढ़ की मांसपेशियों की कमजोरी, आदि। कुछ बच्चों में रीढ़ की हड्डी एक तरफ झुकी भी हो सकती है। उपचारात्मक कसरतें कराकर इसे रोका जा सकता है।

आंखों का भेंडापन—एक वर्ष की आयु के बाद इसकी उपेक्षा उचित नहीं है। बच्चे को आंखों के डाक्टर को दिखाना चाहिए, जो चश्मे व आपरेशन आदि से भेंडापन ठीक कर सकता है, अन्यथा कमजोर आंख की ज्योति चले जाने

चित्र ४७
धंसे हुए कंधे

चित्र ४८–भेंडापन

का डर रहता है। लेकिन शैशव में थोड़े भेंडेपन का होना कोई डरने की बात नहीं है।

देखने व पढ़ने में दोष—इनका पता तब चलता है, जब बच्चे को स्कूल में बोर्ड पर लिखा हुआ ठीक से नहीं दीखता। पढ़ने के लिए वह पुस्तक बहुत पास या बहुत दूर रखता है। ऐसी हालत में आंखों के डाक्टर से जांच करानी चाहिए। आंखों पर पड़नेवाले जोर को प्रकाश व डेस्क की उचित व्यवस्था करके कम किया जा सकता है। (चित्र ४९ तथा चित्र ५०)।

सुनने में दोष—शिशु अगर आवाज की ओर ध्यान नहीं देता, तो आमतौर पर इसका कारण श्रवण-दोष ही होता है। ऐसी हालत में माता-पिता को चाहिए कि वे कान के विशेषज्ञ की सलाह लें। बहरे बच्चे, जबतक कि उन्हें विशेष रूप से सिखाया न जाये, बोलना भी नहीं सीख सकते।

बायें हाथ का प्रमुख उपयोग—इसे ठीक करने की कोशिश नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि यह दायें हाथ की प्रमुखता की ही तरह कुछ लोगों के साथ स्वाभाविक होता है। ऐसे बच्चों को दायें हाथ का उपयोग सिखाने की कोशिश करना उनके लिए और मुश्किलें पैदा कर देता है।

चित्र ४९–डेस्क पर पढ़ते समय प्रकाश की ठीक स्थिति

नकसीर—इसकी वजह चोट या जुकाम हो सकती है। कभी-कभी कोई कारण नहीं भी दीखता। ऐसी हालत में बच्चे को तबतक सिर झुकाकर बैठाना चाहिए कि खून बहना बंद न हो जाये। नकसीर रोकने के लिए नाक के सिरे तथा माथे पर ठंडे पानी की पट्टी भी रखी जा सकती है। नकसीर बार-बार चल पड़ती हो, या खून अधिक जाता हो, तो बच्चे को डाक्टर को दिखाना चाहिए।

चित्र ५०—पढ़ने का डेस्क

: ६ :
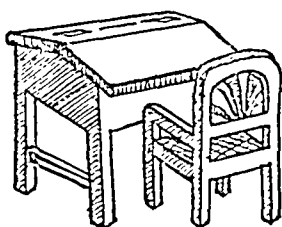
दुर्घटनाएं तथा विष

दुर्घटनाएं

घरों अथवा सड़कों पर अभिभावकों की असावधानी की वजह से आये दिन बच्चों को चोटें लगती रहती हैं और उनकी जानें तक जाती रहती हैं। माता-पिता द्वारा बच्चों को कुछ सुरक्षा की आदतें डाले जाने तथा कुछ सुरक्षा-साधनों के उपयोग से इनमें से अधिकतर दुर्घटनाओं से बचा जा सकता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :

बच्चे को कभी ऐसे पलंग, खाट अथवा दीवार पर मत छोड़िये, जिसमें जंगला (कटघरा—रेलिंग) वगैरा न हो, नहीं तो बच्चा नीचे गिरकर चोट खा सकता है।

जब मां खाना बनाने या दूसरे किसी कामों में व्यस्त हो, तब यदि बच्चे को देखनेवाला कोई न हो, तो बच्चे को खेलने के लिए बनाये गये विशेष कटघरे में ही रखिये, जिसमें उसके लिए खिलौने भी रखे हों। ये कटघरे इतने बड़े होने चाहिएं कि बच्चा उनके भीतर आसानी से इधर-उधर हिल-डुल, चल-फिर और खेल सके। (चित्र ५१ तथा ५२)।
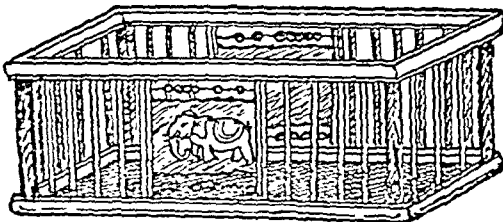
चित्र ५१—खेल का कटघरा

बिजली के

करेंटवाले तार को छोटे बच्चों की पहुंच से दूर रखिये। उत्सुकता के कारण बच्चा बिजली के इन तारों को गीले हाथ लगाकर अथवा अपने मुंह में रखकर बिजली का धक्का खा सकता है।
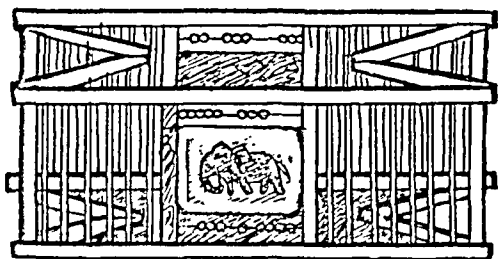
चित्र ५२—समेटा हुआ खेल-कटघरा

किसी भी प्रकार के तेज औजार—जैसे, कैंची, चाकू, ब्लेड, सूई, आदि बच्चों के हाथों में नहीं पहुंचने चाहिएं। इन्हें भी बच्चों की पहुंच के बाहर रखिये। ये बहुत खतरनाक हैं—इनसे भी बच्चे को चोट लगने, कटने और चुभने का अंदेशा रहता है।

बच्चों को रसोई अथवा आग के पास नहीं जाने देना चाहिए। उबलती हुई वस्तुओं अथवा गरम बर्तनों को छूने से बच्चा जल सकता है। बच्चे को खुली आग से दूर रखने के लिए चित्र ५६ में दिखाये हुए आग से रक्षा करनेवाले साधन का उपयोग करना चाहिए।

चित्र ५३—बच्चे की पहुंच में बिजली के तार खतरनाक हो सकते हैं
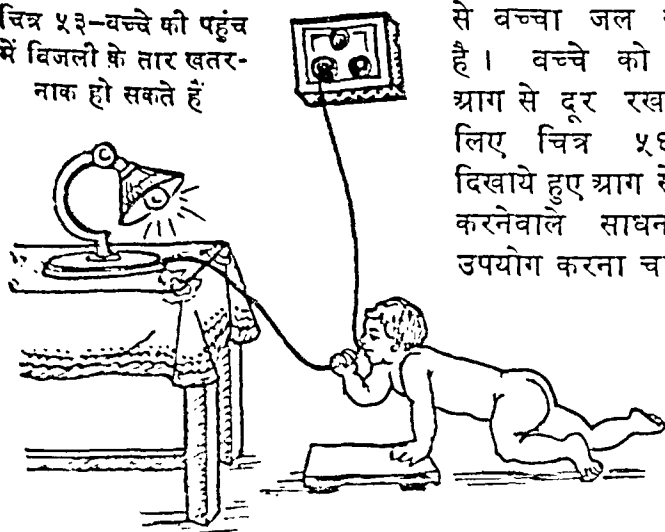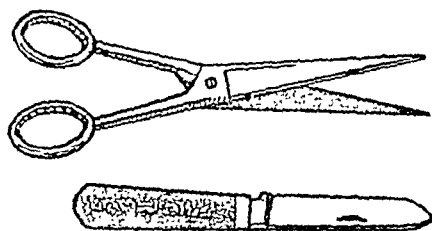
चित्र ५४—तेज औजार खतरनाक हैं

दियासलाई की डिब्बियां भी बच्चों के हाथों में नहीं पड़ने देनी चाहिएं। ऐसी जगह भी बच्चों को अकेला नहीं छोड़ना चाहिए, जहां पर दीया अथवा लालटेन आदि जल रहे हों या और कोई खुली हुई रोशनी हो।

छोटे बच्चों की फ्राक का झूलता हुआ घेर दिवाली पर फटाके-फुलझड़ी वगैरा छोड़ते समय या पास जलते दीये की लौ से आसानी से आग पकड़ सकता है। छोटी बच्चियों को अपने कपड़ों को ऐसे मौकों पर समेटकर रखना सिखाइये।

सीढ़ियों पर तथा बड़े हालों में खिलौने, संदूक, आदि ऐसी चीजें मत छोड़िये, जिनसे ठोकर खाकर बच्चा गिर सकता है। चिकने फर्श पर बिछा कालीन भी चंचल बच्चे के भागते-दौड़ते समय खतरनाक हो सकता है। बच्चे को चढ़ते-उतरते समय रेलिंग का सहारा लेना सिखाकर दुर्घटनाओं से आसानी से बचाया जा सकता है।

चित्र ५५—रसोईघर में बच्चों की उपस्थिति ठीक नहीं

फिसलने से होनेवाली दुर्घटनाओं को रोकने के लिए फर्श पर कोई चीज न पड़ी रहने दीजिये।

चित्र ५६—आग से बचाव का साधारण फायर गार्ड

पानी से भरे हौज अथवा टब से भी बच्चे आकर्षित हो सकते हैं और इनकी वजह से भी गंभीर दुर्घटनाएं हो सकती हैं। ऐसी नांदों अथवा हौजों को हमेशा ढांककर रखना चाहिए। सुरक्षात्मक उपाय के तौर पर बच्चों को तैरना भी सिखा देना चाहिए।

बिच्छू काटना एक आम बात है और इसका डंक छोटे बच्चों के लिए काफी खतरनाक साबित हो सकना है। गंदे घरों में बिच्छू का पाया जाना सामान्य बात है। इसके बचाव के लिए बच्चों को हमेशा खाट पर सुलाना चाहिए, घर को रोज साफ करना चाहिए तथा बच्चों के कमरे के पास किसी प्रकार का काठ-कबाड़ नहीं रखना चाहिए।

चित्र ५७—खुली हुई नांद या पानी-भरा हौज खतरनाक है

खेलते समय बच्चों को खरोंच अथवा छोटी-मोटी चोटें प्रायः लगती ही रहती हैं। ऐसी चोटों को फौरन ही साबुन तथा पानी से धोकर उन पर थोड़ा-सा टिंचर आयोडीन लगा देना चाहिए। इससे थोड़ी जलन अवश्य होगी, पर थोड़ी देर ही। धूल तथा मिट्टी में टिटेनस के

चित्र ५८—बच्चे पर रास का प्रयोग

कीटाणु हो सकते हैं। ये ऐसी छोटी-मोटी चोटों से शरीर में प्रवेश कर गंभीर रोग पैदा कर सकते हैं। इस छूत के खतरे को दूर करने के लिए फौरन ही घाव को साफ करना तथा उसका तुरंत उपचार करना अत्यंत आवश्यक है। अगर बड़ी चोट लगी हो, जिसमें चमड़ी बहुत कट गई हो और खून निकलता हो, और यदि बच्चे को पहले से टिटेनस का निरोधक टीका नहीं लगवाया गया हो, तो फौरन ही बचाव के लिए ऐसा टीका लगवा लेना आवश्यक है।

मेलों अथवा भीड़-भाड़ के स्थानों में बच्चे इधर-उधर भटककर खो जाते हैं। छोटे बच्चे सड़क पर किसी नई चीज को देखने के लिए अपने अभिभावकों का हाथ छोड़कर अलग हो जाते हैं। पश्चिमी देशों में ऐसे चंचल बच्चों के लिए 'रास' का चलन है। भारत में भी सड़कों पर
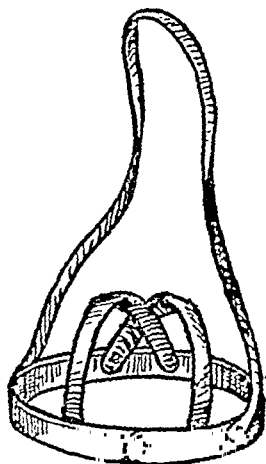
चित्र ५९—बच्चों के लिए रास

बढ़ते हुए यातायात को देखते हुए हम इसके इस्तेमाल की राय देते हैं।

चित्र ६०—मिट्टी का तेल बच्चों की पहुंच में मत रखिये

विष

विषैले पदार्थ बच्चों की पहुंच में कभी नहीं रखने चाहिएं। बच्चों द्वारा मिट्टी का तेल पिये जाने की दुर्घटनाएं भारतीय घरों में अक्सर होती रहती हैं। मिट्टी के तेल की बोतल बच्चों के हाथ में न पड़ सके, इसका ध्यान रखना चाहिए। आमतौर से समय-समय पर काम में आनेवाली दवाइयों—जैसे, फिनाइल, टिंचर आयोडीन, लायसोल, कुनैन, नींद लाने की गोलियां, आदि—को बच्चों की पहुंच से दूर ताले में बंद रखिये। गरम कपड़ों को कीड़े से बचानेवाली नेफ्थलीन की गोलियां, चूहे मारने की जहर की गोलियां, आदि भी ऐसे स्थान पर रखिये, जहां बच्चा उन्हें पा न सके। थोड़ी-सी सामान्य बुद्धि और देख-भाल से बड़ी-बड़ी परेशानियों को टाला जा सकता है। अपने बच्चों को सुरक्षा की आदतें कम उम्र में ही सिखाना शुरू कर देना चाहिए।

चित्र ६१—बच्चे को उल्टी कराने का तरीका

दूसरे आम जहर धतूरे और कनेर के बीज हैं। यदि किसी बच्चे ने कोई जहरीली चीज खा ली हो, तो उसे तुरंत उल्टी करा दीजिये।

इसके लिए उसके मुंह में हलक तक उंगली डालकर उसके सिरे को अंदर ही घुमाइये। इससे बच्चा फौरन ही उलटी कर देगा।

यदि उसने कुछ खाया-पिया न हो, तो उलटी कराने से पहले उसे दूध या और कोई चीज पिलाकर फिर उलटी कराइये। उलटी करवाने के बाद उसे दुबारा कुछ पिलाकर फिर उलटी करवाइये। यह तो प्राथमिक उपचार हुआ, इसके बाद तुरंत ही उसे किसी डाक्टर के पास ले जाइये तथा बच्चे ने जो चीज खाई हो, उसके बारे में डाक्टर को पूरी-पूरी जानकारी दीजिये।

अन्य वस्तुएं—बच्चे छोटी-छोटी चीजें, जैसे, सिक्के, पिन, बीज, सुपारी, बटन, आदि आमतौर पर निगल जाते हैं। ये वस्तुएं न तो बच्चों के हाथों में देनी चाहिएं और न ही ऐसे स्थान पर रखनी चाहिएं, जहां से वे उनके हाथों में पड़ सकें। ऐसी सब चीजों के बारे में बच्चे सिर्फ एक प्रकार से ही अपनी उत्सुकता शांत करते हैं—उन्हें मुंह में रखकर। बच्चों को अंगूठी पहनाने का रिवाज भी गलत है। कभी-कभी बच्चा उसे भी अपने मुंह में डालकर निगल लेता है। बच्चे ने अगर ऐसी कोई चीज, जैसे, सिक्का वगैरा निगल ली हो, तो यह साधारणतः बच्चे के दस्त के साथ बाहर आ जाती है। यह जानने के लिए कि निगली हुई चीज बाहर निकली या नहीं, मां को बच्चे के दस्त देखते रहना चाहिए।

चित्र ६२—गले में फंसी चीज बाहर निकालने का तरीका

बच्चे के ऐसी चीज खा जाने पर उसे चावल, हलुआ, या केला-जैसी नरम चीज खाने के लिए देनी चाहिए, जिससे निगली हुई वस्तु उसमें चिपककर बाहर आ सके। ऐसे मौकों पर दस्तावर या रेचक दवा नहीं देनी चाहिए। यदि निगली हुई वस्तु गले में अटक गई हो, और बच्चे को सांस लेने में तकलीफ हो रही हो, तो फौरन ही डाक्टर को दिखाना चाहिए। इसके निकालने की कोशिश करने के लिए बच्चे को अपने घुटनों पर उलटा लिटाकर तथा उसके सिर को थोड़ा झुकाकर उसकी पीठ थपथपानी चाहिए, जैसाकि चित्र ६२ में दिखाया गया है। ऐसा करने से कभी-कभी चीज बाहर निकल जाती है। यदि वह बाहर न निकले, अथवा बच्चा नीला पड़ने लगे, तो उसे उसी क्षण अस्पताल ले जाना चाहिए।

कभी-कभी बच्चे चने, मक्की, गेहूं अथवा किसी दूसरी चीज के बीज या दाने अपने कान या नाक में डाल लेते हैं। यदि ऐसी कोई चीज नाक में फंस गई हो, तो बच्चे को जोर से नाक छिनकने को कहना चाहिए। यदि ऐसी कोई चीज फंसी हुई दिखाई दे रही हो, तो उसे किसी चिमटी की सहायता से सावधानीपूर्वक बाहर निकाल देना चाहिए। किंतु देखा गया है कि इस प्रकार के प्रयत्नों से फंसी हुई चीज बाहर निकलने की बजाय अंदर ही धंसती चली जाती है। ऐसी स्थिति में बच्चे को डाक्टर के पास ले जाना ही उचित है।

: १० :

भावनात्मक पहलू

खेल-कूद तथा मनोरंजन

खेल-कूद की इच्छा सारे ही प्राणी जगत में स्वाभाविक है। बिल्ली तथा कुत्तों के बच्चों को उछल-कूद करते देखने से ही यह बात समझी जा सकती है। शिशुओं के लिए खिलौने लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे मजबूत हों और आसानी धोये जा सकें, क्योंकि बच्चा खिलौनों को इधर-उधर पटकता है, जमीन पर फेंकता है, जिससे उनमें धूल एवं कीटाणुओं के लगने का खतरा रहता है और वह उन्हें मुंह में लेकर चबाता-चूसता भी है। खिलौने रबड़ या प्लास्टिक-जैसी नरम चीज के बने हों, तो ठीक है। सेल्यूलाइड के खिलौनों के टूट जाने पर उनमें नोकें निकल आती हैं, जो बच्चे को चुभ जाती हैं। दूसरे, खिलौने ऐसे भी नहीं होने चाहिएं कि जिनके अंग आसानी से अलग निकल आते हों या टूट जाते हों, जैसे, गुड़िया या जानवर की आखें—इन्हें बच्चे निगल सकते हैं। ऐसे खिलौने नहीं लेने चाहिएं, जिनमें सीसे के बने रंग लगे हों। बच्चे अकसर खिलौनों को चूसते अथवा चबाते रहते हैं और सीसे से बने रंग-रोगनवाले खिलौने बच्चे को नुकसान पहुंचा सकते हैं, क्योंकि सीसा जहरीला होता है।

जब बच्चा अच्छी तरह चलने लगता है और उसकी मांसपेशियां मजबूत हो जाती हैं, तब वह ऐसे खिलौने अधिक पसंद करेगा, जिन्हें खींचा या चलाया जा सके, जैसे, हाथगाड़ी

अथवा लकड़ी के चौकोर गिट्टों (ब्लाक) के खिलौने। वह घर में कुरसियों तथा स्टूलों को खींचेगा, या उन्हें धक्का देने की कोशिश करेगा। उसे पूरी तरह खेलने और अपनी शक्ति का उपयोग करने का मौका देना चाहिए। उसके खेलकूद में बड़ों को बाधा नहीं देनी चाहिए। जिन घरों में बच्चों पर हमेशा निगाह रखना संभव न हो, वहां के लिए लकड़ी का बना खेल-कटघरा (चित्र ५१-५२) अच्छी चीज है। इसमें बच्चा पूरी स्वतंत्रता से खेल-कूद सकता है। इस प्रकार के खेल-कटघरे, जब उनकी आवश्यकता न हो, तो आसानी से मोड़कर टांगे जा सकते हैं।

दूसरे बच्चों के साथ सामूहिक खेलों की आदत बच्चों में बाद में आती है। ऐसे समय में गुड़ियां, गुड्डीघर, गुड़ियों के बर्तन, रंग, आदि की जरूरत होती है। ६-७ वर्ष के बच्चे मिलकर ही खेल-कूद करना चाहते हैं और वे बड़े क्रियाशील होते हैं। चीजें बनाने में उनकी दिलचस्पी होने लगती है। ८-१० वर्ष के होते-होते वे दल बनाकर सामूहिक खेल खेलना प्रारंभ कर देते हैं।

छोटे बच्चों की किताबें मोटे अक्षरों में छपी होनी चाहिएं तथा उसमें आसानी से समझ में आ सकनेवाले सुंदर चित्र भी होने चाहिएं। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, वह जानवरों एवं बच्चों की कहानियां पसंद करने लगता है।

घर में बीमार बच्चे की देख-भाल

आमतौर पर बच्चे के बताने के पूर्व ही मां को पता चल जाता है कि बच्चे की तबीयत ठीक नहीं है। यदि बच्चे का माथा या शरीर गरम लगे, तो हो सकता है कि उसे बुखार हो। थर्मामीटर लगाकर (बच्चा ज्यादा छोटा हो, तो उसकी जांघ या बगल में लगाकर) यह जाना जा सकता है कि उसे कितना बुखार है। (चित्र ६३)।

चित्र ६३—बगल या जांघ में थर्मामीटर लगाना
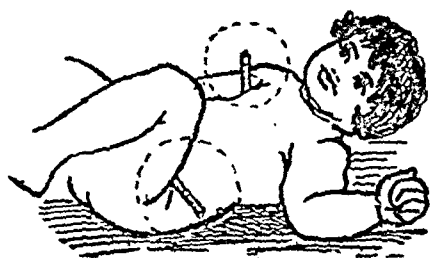
ज्यादा तेज बुखार में सिर पर बरफ की थैली रखकर तथा गुनगुने या ठंडे पानी से भीगे कपड़े से कई बार शरीर पोंछकर अथवा पानी में भिगाये कपड़े में लपेटकर रखने से ताप नीचे लाया जा सकता है। बुखार में रोज यह देखते रहना चाहिए कि खाल पर किसी तरह के चकते (लाली) या दाने तो नहीं पड़े हैं।

ऐसे बच्चों को, जिन्हें हलकी-सी हरारत ही है और जो बीमारी का ज्यादा अनुभव नहीं करते, उन्हें बिस्तर पर लिटाये रखना मुश्किल होता है। ऐसे बच्चों को बिस्तर पर लेटाये रखने के लिए थोड़ी चतुराई से बहलाने की जरूरत पड़ती है। ऐसे बच्चे को चित्र ६५ के अनुसार तकियों के सहारे दिवाल से लिटाकर अथवा कुरसी में भी आराम से बिठाया जा सकता है।

चतुर माता बच्चे को बहलाने के लिए उसके सामने शीशा लगा सकती है, जिससे वह साथ के कमरे में अथवा बाहर सड़क पर होनेवाली घटनाओं को देखकर अपना दिल बहला सकता है। बच्चे के मनोरंजन के लिए बिस्तर पर, बच्चे की पहुंच के भीतर, कागज के लिफाफे में अखबारों से काटकर निकाली गई रंग-बिरंगी तसवीरें भी रखी जा सकती

चित्र ६४—सिर पर बरफ की थैली रखना और बदन को भीगे कपड़े से पोंछना

चित्र ६५—बीमार बच्चे को तकियों के सहारे आराम से बैठाना

हैं। बच्चे के पास ही एक घंटी रखी रहनी चाहिए, जिससे जरूरत पड़ने पर वह मां को बुला सके। खाने-पीने की चीजें ट्रे में रखकर लानी चाहिएं। यदि ट्रे न हो, तो फ्रेम जड़ी तस्वीर से ट्रे का काम लिया जा सकता है। ऐसे बच्चों के लिए, जिन्हें पूरे आराम की जरूरत हो, टट्टी-पेशाब कराने के लिए बैड-पैन अथवा चौड़े मुंह के शीशे के मर्तबान का उपयोग करना चाहिए। बिस्तर को गीला होने से बचाने के लिए चादर के नीचे मोमजामा बिछा देना चाहिए।

बच्चों को दवा आदि देने में आमतौर पर बड़ी दिक्कत होती है। अगर संभव हो, तो दवा का स्वाद बदलने के लिए उसमें थोड़ा शहद या मोसंबी अथवा संतरे का रस मिलाया जा सकता है। थोड़े बड़े बच्चे को नपने गिलास के बजाय दवा उसी प्याले में, जिसे वह सामान्यतः इस्तेमाल करता है, देना ज्यादा अच्छा
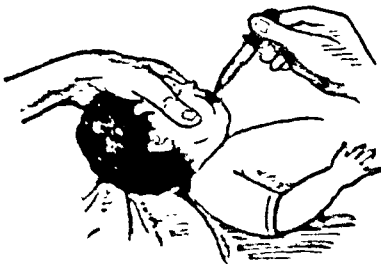
चित्र ६६—शिशु को दवा देने का एक तरीका

चित्र ६७—बच्चे को दवा देने का एक और तरीका

है, या ध्यान बदलने के लिए दवा लेमन की तरह 'स्ट्रा' से भी पिलाई जा सकती है। जब बच्चा इतना बड़ा हो जाये कि वह दवा को कैपस्यूल अथवा गोलियों के रूप में निगल सके, तो उसे यह अच्छी तरह समझा देना चाहिए कि इसे कैसे निगला जाये। गोली को जबान के पिछले हिस्से पर रखकर उसके बाद पानी अथवा रस पिला देना चाहिए। यदि पानी या रस निगलने के बारे में ज्यादा जोर दिया जाये, तो बच्चा गोली के बारे में कम ही सोचेगा, जो उसके साथ अपने-आप ही अंदर चली जायेगी।

बच्चे के बीमारी से छुटकारा पा लेने के बाद, लेकिन कमजोरी रहने की हालत में, यह हो सकता है कि वह कुछ चिड़चिड़ा और जिद्दी हो जाये। ऐसा खासतौर पर तब होता है कि वह लंबे अरसे तक बीमार रहा हो। इसका कारण यह है कि बीमारी की अवस्था में उसकी जो जरूरत से ज्यादा देख-भाल की जाती है और जो सहानुभूति उसे मिलती है, उसका वह आदी हो जाता है और वह खाने-पीने और दूसरी कई बातों के लिए पूरी तरह से अपनी मां पर निर्भर रहने लगता है। स्वस्थ हो जाने के बाद बच्चे को इन बातों में पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए धीरे-धीरे प्रयत्न करना चाहिए। बीमारी के बाद लंबे समय तक कमजोरी की हालत में परिचर्या पानेवाले बच्चे भी उपयुक्त व्यक्ति के निरीक्षण में बिस्तर पर पड़े-पड़े ही पढ़ाई-लिखाई तथा अन्य प्रकार का मनोरंजन प्राप्त कर सकते हैं।

बच्चों का पालन और उससे संबंधित समस्याएं—बच्चे के मस्तिष्क के सहज विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसकी भावना संबंधी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ण रूप से पूर्ति हो—पहले घर में और बाद में स्कूल में अपने हम-उम्रों के बीच। बच्चे को पहली संगत उसके घर पर ही मिलती है। कुछ घरों में वातावरण सहज होता है। माता-पिता उदार दृष्टिकोण के होते हैं, और अपने बच्चों की भावनाओं को समझते हैं। ऐसे परिवारों में बच्चे के मानस का स्वस्थ विकास होता है। जिन परिवारों में हमेशा लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं, वहां बच्चा हमेशा तनाव में रहता है और उसमें मानसिक विकृतियां पैदा हो सकती है। कई घरों में हालांकि माता-पिता का इष्ट बच्चे के हित में होता है, किंतु फिर भी वे उसके लालन-पालन में भयंकर भूलें करते हैं। बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए ऐसे माता-पिता को शिक्षित करने की आवश्यकता है।

आइये, हम बच्चों की आरंभिक भावनाओं का अध्ययन करें। नवजात शिशु या तो चुपचाप पड़ा रहता है या फिर भूखा अथवा बेआरामी की स्थिति में रोता है। गोद में ले लेने, दूध पिलाने अथवा झुलाने से वह चुप हो जाता है। दो महीने का हो जाने पर वह खुशी से मुसकराने और किलकने लगता है। ६ महीने की उम्र में वह गुस्सा प्रदर्शित करने लगता है। गुस्से के मारे देर तक रोने के बाद कुछ देर के लिए बच्चा सांस भी रोक सकता है। यह देखने में तो खतरनाक होता है, पर वास्तव में ऐसी घबराने की बात नहीं है। डर भी बच्चे की आरंभिक प्रतिक्रियाओं में ही है। उसे अपरिचित लोगों तथा वातावरण से डर लगता है। कुछ बच्चे बहुत ही शर्मीले होते हैं, लेकिन आयु बढ़ने के साथ-साथ शर्म भी जाती रहती है।

बुद्धि में विकास के साथ-साथ बच्चा बदलते वातावरण

के संपर्क में आता जाता है। अब उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता स्नेह और सुरक्षा है। बच्चा मां की गोद में सुरक्षा का अनुभव करता है। दुलार उसे अच्छा लगता है। लेकिन अपने यहां इसकी अति कर दी जाती है। बच्चे को लगातार गोद में घुमाया जाता है। वह मां से अधिकाधिक अपेक्षा करने लगता है और स्वयं कुछ भी करना नहीं सीखता। और सब बातों की भांति यहां भी मध्यम मार्ग ही सबसे अच्छा रहता है। स्नेह की ठोस अभिव्यक्ति के अभाव में बच्चा अपने को उपेक्षित अनुभव करता है और इससे स्नायुविक रोग भी पैदा हो सकते हैं। अत्यधिक संरक्षण से, अर्थात सामान्य पोषण और दुलार को हद से आगे ले जाने तथा ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों से, जिनसे बच्चा खुद निकल सकता है, बचा-बचा कर रखने से बच्चा डरपोक तथा पराश्रयी हो जाता है, या वह बागी और उद्दंड भी हो सकता है। अगर माता-पिता बहुत ज्यादा लाड़ करनेवाले या उदार हुए, तो बच्चा स्वभाव से औरों को दबानेवाला हो सकता है।

शैशव के बाद बच्चे में इस भावना का होना आवश्यक है कि बाहर चाहे कुछ हो जाये, घर में वह सुरक्षित है। बच्चे को इस बात का अनुभव होना ही चाहिए कि वह घर का ही है और उसकी कभी उपेक्षा नहीं की जायेगी।

बच्चे में स्थायी भीरुता तनाव का लक्षण है। इस पर आसानी से पार नहीं पाया जा सकता। शर्मीले बच्चे को बहलाकर उसकी शर्म छुड़ाने की कोशिश करनी चाहिए। उसे अपनी उम्र के बच्चों के साथ खेलने के खूब अवसर दिये जाने चाहिएं। भीरुता की प्रतिक्रियाएं प्रायः अति-संरक्षण की प्रतीक होती हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिये कि बच्चा बैल के तमाशे से डरकर बचने के लिए मां के पास भाग आता है। अब बच्चे की कायरता से लजाकर पिता

को यह नहीं करना चाहिए कि वह बच्चे को बैल के सामने जाने के लिए मजबूर करे। इससे तो बात और बिगड़ जायेगी। न ही मां को यह चाहिए कि वह हमेशा ही बच्चे को बचाती फिरे। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चे को यह अनुभव करायें कि उसका डर बिना बात का है, बैल के बारे में उसे रोचक कहानियां सुनायें और धीरे-धीरे उसे तमाशे का आनंद लेना सिखायें। छोटे बच्चों के साधारण भय को इसी तरह दूर किया जाता है। किसी अज्ञात कारण से उत्पन्न भय को, जिसकी जड़ें गहरी हों, दूर करने के लिए मनोवैज्ञानिक चिकित्सा की आवश्यकता होती है।

स्कूल जाना शुरू करने के बाद बच्चे तब डरते हैं कि जब वे अपने हमजोलियों की अपेक्षा के अनुकूल अपने को नहीं बना पाते। अगर वे काम में पिछड़ जायें, तो उन्हें अध्यापकों या माता-पिता की नाराजी का डर होता है। शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चे का काम आसान बनाने की कोशिश करे और उसे सभी तरह से प्रोत्साहन दे।

बच्चे का आज्ञाकारी न होना या दूसरों को दबानेवाला होना भी उसके गलत पालन का ही परिणाम है। कुछ माताएं बच्चे की हर इच्छा और जिद को पूरा करती हैं। इससे बच्चा हावी होनेवाला हो जाता है और मां की सत्ता की उपेक्षा करने लगता है। कभी-कभी ऐसा स्वभाव हीनता की गहरी भावना से भी पैदा होता है। बच्चा अपने को किसी बात के लिए अयोग्य पाता है और बाहरी तौर पर उस भावना को छिपाने के लिए गरजता-बरसता है। ऐसे बच्चे को प्रशंसा तथा प्रोत्साहन द्वारा अपनी हीन भावना पर काबू पाने में सहायता करनी चाहिए।

एक वर्ष की अवस्था के बाद बच्चा आजादी का पहला पाठ पढ़ता है। वह चीजों को छूता-पकड़ता है, खुद खाने-पीने की कोशिश करता है और हर चीज की जांच-

चित्र ६८—बच्चे को खाने के लिए खुशामद मत कीजिये

पड़ताल करता है। इस दौर में वह चोट भी खा सकता है, लेकिन तब भी संरक्षण की अति नहीं करनी चाहिए। खाना बिखर जाये, तो भी कोई बात नहीं। वह अपनी हरकतों में तालमेल लाना इसी तरह से सीखता है। मां या दादी-नानी को उसे खिलाने या कपड़े पहराने की जिद नहीं करनी चाहिए।

छोटे बच्चों के लिए यह सामान्य बात है कि वे जो कहा जाये, उसका उलटा करें। यह बच्चे का अपनी नव प्राप्त स्वतंत्रता को अभिव्यक्त करने का अपना तरीका है। उम्र के साथ यह बात जाती रहेगी। बच्चे का हर बात का सतत विरोध ही करना, चाहे वह उसके खिलाफ ही क्यों न जाती हो, इस बात का प्रतीक है कि उस पर मां-बाप बहुत ज्यादा हावी रहे हैं।

झगड़ा आमतौर पर तभी शुरू होता है कि जब बच्चा मां-बाप से भिन्न तरीके से सोचने लगता है। बच्चा अब एक व्यक्ति के रूप में उभरने लगता है और उसे उचित मान दिया जाना चाहिए। भारत में परंपरा उलटी है—माता-पिता की आज्ञा आंख मींचकर मानने की, जो भगवान राम के समय से ही चली आ रही है। कुछ माता-पिता का स्वभाव ही हावी

चित्र ६९—बच्चे का खुद खाना अच्छा है

होने का होता है। पिता चाहता है कि बच्चा बचपन में ही ठीक आदतें बना ले, आज्ञाकारी और सुशील हो और पढ़ाई में अच्छा रहे। मां उस पर लाड़ ढाल देती है और उसे नहलाती-धुलाती है, कपड़े पहनाती है, उसका स्कूल का काम तक कर देती है। ऐसा बच्चा अधिकाधिक दब्बू और भीरु होता जाता है, जिससे बड़ा हो जाने पर भी वह अपने माता-पिता पर निर्भर रहता है और स्वयं निर्णय नहीं ले पाता। कभी-कभी वह विद्रोह कर बैठता है, सिर के या पेट-दर्द का बहाना लेकर काम से बचने की कोशिश करता है या खुलकर अवज्ञाकारी, जिद्दी और दूसरों पर हावी होने-वाला बन जाता है। समझदार मां-बाप बच्चे को अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाते हैं, और तभी दखल देते हैं और वह भी बड़े तरीके से कि जब बच्चा अज्ञानतावशात अपने को हानि पहुंचा सकता है।

चित्र ७०—बच्चे को अपने हाथ से खाने के लिए उत्साहित कीजिये

बच्चे को अनुशासन में लाने के लिए सोच और समझ की जरूरत है। उदाहरण पेश करना सबसे अच्छा तरीका है। अगर मां या बाप खुद ही हमेशा अनम्र हों, तो बच्चे से नम्रता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। बुद्धिमान माता या पिता बच्चे से न्यूनतम बातें करवाना चाहते है, कुछ ही नियमों का पालन करवाते हैं—हां, बच्चे को इस बात का स्पष्ट आभास करा देते हैं कि उसे प्यार तभी किया जाता है कि जब वह अनुशासन में रहे। हर बात के 'मतकर-मतकर' से बच्चा थक जाता है और जिद्दी हो जाता है। अगर

आप चाहें कि आपके रेडियो सुनते समय बच्चा शांत रहे, तो उसे यह कहने का कोई फायदा नहीं कि वह शोर न मचाये। वह बच्चा, जो सामान्यरूपेण क्रियाशील है, घंटे भर तक चुपचाप और बिना हिले-डुले बैठा रहकर नम्रतापूर्वक नहीं बोल सकता। उसे कुछ करते रहने के लिए दे दीजिये—खिलौना रेडियो ही सही। बच्चे का स्वभाव ही नकल करने का होता है और वह वही करना पसंद करता है, जो उसके माता-पिता करते हैं। हो सकता है कि वह गुलदस्ते के टुकड़े-टुकड़े कर डाले, पर इसका मतलब यह नहीं कि उसकी प्रवृत्ति ध्वंसात्मक है। वह शायद इसी बात की नकल कर रहा था कि उसकी मां उसमें फूल कैसे लगाती है। उसकी ध्वंसात्मक प्रवृत्ति तक का उसे कुछ सिखाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। दंड तो अंतिम उपाय ही होना चाहिए। बार-बार की डाट बच्चे को बिगाड़ सकती है। वह दंड की उपयुक्तता तभी समझ सकता है कि जब दंड अपराध के अनुरूप हो—अगर वह खिलौने तोड़ देता है, तो उन्हें उठा लीजिये। एकाध बार की हलकी पिटाई से भी—जबकि उसे इस बात का ज्ञान हो कि उसका अपराध ऐसा है कि उसे सख्त सजा मिलनी ही चाहिए—कोई हानि नहीं। किंतु बार-बार की पिटाई बच्चे को गुस्सैल बनाती है और उसमें तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति तक पैदा कर सकती है। दंड के बाद बच्चे को जल्दी ही क्षमा कर देना चाहिए और उसे माता-पिता का पहला-सा प्यार मिलने लगना चाहिए।

बड़ा बच्चा चाहता है कि उसके गुणों को पहचाना जाये और उसे प्रशंसा मिले—वह प्रशंसा पाने की लगातार चाहना करता है। माता-पिता को उसकी रुचियों में रस लेना चाहिए—प्रशंसा की बात हो, तो उसकी प्रशंसा करनी चाहिए; साथ ही उचित आलोचना भी। अगर वह असफल रहे, तो उसे प्रोत्साहित करना चाहिए। यदि उसे उचित प्रशंसा नहीं

मिलती, तो अपने उद्दंड व्यवहार द्वारा वह ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न करेगा। दुर्भाग्यवश कई घरों में ऐसा ही होता है। यदि बच्चे का व्यवहार ठीक रहता है, तो उस पर ध्यान नहीं दिया जाता; किंतु जब वह शैतानी करता है, तो उसे डांट-फटकार और दंड दिया जाता है। इससे उसे ऐसा अनुभव होता है कि शैतानी द्वारा ही वह माता-पिता का ध्यान आकर्षित कर सकता है, अन्यथा नहीं। खाना खाने से इनकार करने अथवा खाने के समय उत्पात मचाने का अकसर यही कारण होता है।

यदि बच्चा अकेला है और घर में उसका कोई साथी-संगी नहीं है, तो माता-पिता को इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि बच्चे को पास-पड़ोस का कोई हमजोली मिले। बच्चों के क्लब, स्काउटिंग, आदि इस संबंध में बहुत सहायक हो सकते हैं। केवल बड़े आदमियों की ही संगत में पले बच्चे का समुचित व सामान्य विकास नहीं हो सकता, चाहे वे लोग बच्चे को खुश रखने के कितने ही इच्छुक क्यों न हों।

अच्छी आदतें डालना

बच्चे को अच्छी आदतें पैदा करने की शिक्षा देनी चाहिए, किंतु इस बारे में कोई निश्चित नियम नहीं बना लेने चाहिएं। कुछ बच्चों में सीखने की प्रवृत्ति दूसरों की अपेक्षा अधिक होती है, चाहे अधिकतर माताएं यही समझें कि यह उनके कठिन परिश्रम का ही परिणाम है। असल में बच्चा अपने-आप प्रशिक्षित होता है। पहले इसके कि प्रशिक्षण प्रारंभ हो, बच्चे को बौद्धिक व शारीरिक रूप से इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए। उदाहरण के तौर पर पेशाब करने की आदत डालना ही ले लीजिये। इसके लिए, बच्चा इस लायक होना चाहिए कि वह कम-से-कम दो घंटे तक पेशाब रोक सके। यह भी आवश्यक है कि इन सब

चीजों को वह समझे और उनमें दिलचस्पी ले। पश्चिमी देशों में टट्टी-पेशाब की आदत डालने पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता है। कई बार तो माताएं अति कर देती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि बच्चा जिद्दी हो जाता है और कहना नहीं मानता। लेकिन भारत के कई घरों में शुरू में टट्टी-पेशाब की आदत पर जोर नहीं दिया जाता और बच्चा जब भी और जहां भी चाहे, टट्टी-पेशाब कर देता है। ऐसी स्थिति में माता का मार्गदर्शन आवश्यक है।

टट्टी की आदत—माताओं के लिए बच्चों को टट्टी-पेशाब कराने के स्वस्थ तथा वैज्ञानिक तरीकों को सीखना और उन्हें अमल में लाना जरूरी है। इससे न केवल सफाई ही ठीक से रहती है, वल्कि टट्टी में जो अतिसार या मोतीझरा के कीटाणु होते हैं, वे भी नहीं फैलते; और इस तरह औरों को भी बीमार नहीं कर पाते। बच्चों को विस्तर पर या साड़ी पर टट्टी मत करने दीजिये। इसके लिए अलग कपड़ा इस्तेमाल करना चाहिए। इस्तेमाल किये गये कपड़े को तामचीनी के ढक्कनदार वर्तन में रखा जा सकता है, ताकि फुरसत में उसे साफ किया जा सके। अकसर वच्चे को फर्श पर या गली में टट्टी करने दिया जाता है। ऐसा करना गंदा तो है ही, इसके अलावा यह समुदाय के लिए भी खतरनाक है। छोटे वच्चों को टट्टी कराने, उसे एकत्र तथा विसर्जित करने के कुछ स्वास्थ्यकर, वैज्ञानिक
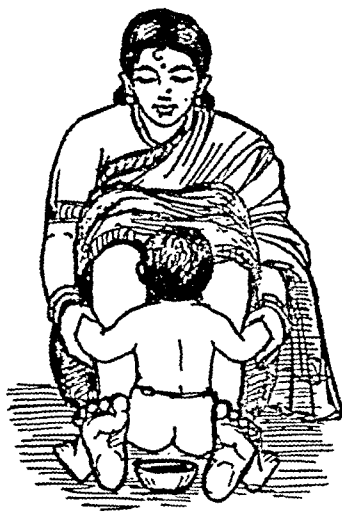
चित्र ७१—वच्चे को टट्टी-पेशाव अलग वर्तन में कराना चाहिए

और सरल तरीके चित्र ७१ तथा ७२ में दिखाये गये हैं। बच्चों को चित्र में दिखाये ढंग से टांग पर बिठाकर छोटे तसले या कागज पर टट्टी-पेशाब कराने की आदत डाली जा सकती है। जो लोग पैसा खर्च कर सकते हैं, वे बच्चों का विशेष कमोड भी खरीद सकते हैं।
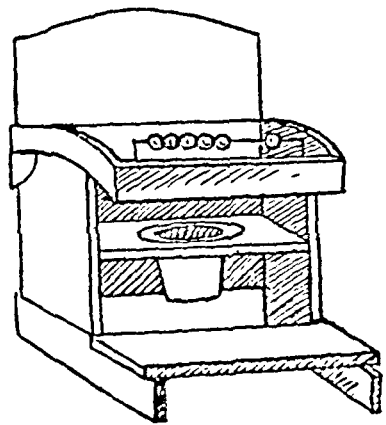
चित्र ७२—बच्चों का कमोड

टट्टी-पेशाब की आदत डालने का उचित समय वह है, जब बच्चा ठीक तरह से बैठने लगता है—आमतौर पर जब वह १० महीने का हो जाता है। सुबह आमतौर पर बच्चा १० मिनट के लिए टट्टी के लिए बैठता है। इसके लिए खास-तौर से बनी बेंत या लकड़ी की कुरसी का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इसकी बाजू में हत्था, आगे रोक और पीछे लकड़ी का सहारा लगा होता है, ताकि बच्चा गिरे नहीं। कुरसी के बीच में टट्टी का बर्तन होता है। भारत के कई घरों में बच्चे को माता के पैरों के बीच बिठाकर टट्टी कराई जाती है। मैला नीचे रखे कागज पर गिरता है, जिसे बाद में फेंक दिया जाता है। कुछ बड़ा बच्चा स्वयं बैठकर कागज पर टट्टी करता है। बच्चे को यह सब बिलकुल साधारण और दोस्ताना ढंग से सिखाना चाहिए। १८ महीने से २ साल के बीच का बच्चा धीरे-धीरे टट्टी-पेशाब रोकना सीख जाता है। पर ऐसा न करने लगे, तो इस के कई कारण हो सकते हैं। यदि मां बहुत जोर-जबरदस्ती करे, तो बच्चा उसका विरोध करके अपनी नाराजी दिखलायेगा। मां को धीरज रखना चाहिए और बच्चे के सहयोग की प्रतीक्षा करनी

चाहिए। या इसका कारण यह भी हो सकता है कि उसे दस्त काफी कड़ा होता हो, जिसमें उसे बहुत तकलीफ होती है। ऐसी स्थिति में बच्चा अपनी तकलीफ का संबंध पाखाने के बर्तन से जोड़ लेता है। कब्ज दूर करने के लिए बच्चे को ग्लीसरीन का या सादा एनीमा या बत्ती आदि कतई नहीं देना चाहिए। इससे बच्चा डर जाता है। यदि कब्ज हमेशा बना रहता हो, तो उसे दूर करने के लिए बच्चे को जामुन, या शहद और केला, या खमीर देना चाहिए। रोज की खुराक में काफी मात्रा में हरी सब्जियां देना कब्ज को दूर करता है। कभी-कभी बीमारी के बाद अथवा घूम कर लौटने पर बच्चा फिर टट्टी कर सकता है। यह भी हो सकता है कि भाई या बहन के प्रति ईर्ष्या या माता की किसी बात का बुरा मान जाने के कारण वह एकाध बार टट्टी करे ही नहीं। ऐसी स्थिति में उसे डांटना-फटकारना नहीं चाहिए। धीरज से काम लेने पर सब ठीक हो जायेगा।

पेशाब की आदत—दो साल का होते-होते बच्चा सामान्यत: दिन में कपड़ों में पेशाब नहीं करता, चाहे उसे इसकी आदत न डाली गई हो। पेशाब की आदत डालना शुरू तब करना चाहिए, जब बच्चा कम-से-कम २ घंटे तक पेशाब रोक सके। यदि पेशाब करने के लिए उसे हर बार मूत्रालय जाने को कहा जाये, तो वह जिद्दी हो जायेगा। उसे एक-दो बार पेशाब करने की जगह बता देना काफी है। ३-४ वर्ष की उम्र होते-होते बच्चा रात में भी पेशाब नहीं करता। मूत्राशय अपने को इसका आदी बना लेता है। यदि ५ वर्ष की उम्र में भी बच्चा रात में बिस्तर में पेशाब कर देता हो, तो मां को इसका कारण जानने का प्रयत्न करना चाहिए। अधिकतर तो इसका कारण मानसिक तनाव ही होता है। हो सकता है कि घर या स्कूल में उसे झिड़का गया हो, या अपनी बहन से उसे ईर्ष्या हो, या उसके बिस्तर पर पेशाब

करने को इतनी ज्यादा अहमियत दे दी गई हो कि वह शर्मिंदा अनुभव करता हो। इसका उपाय यही है कि कोशिश करके उसके मानसिक तनाव को कम किया जाये। कई बार होता यह है कि कुछ महीनों तक तो बच्चा ठीक रहता है, पर फिर अचानक किसी बात से परेशान होने पर फिर बिस्तर में पेशाब कर देता है। लेकिन यह धीरे-धीरे अपने-आप ठीक हो जाता है।

जहांतक बड़े बच्चों का प्रश्न है, दोपहर-शाम को उन्हें दिये जानेवाले तरल पदार्थों की मात्रा में कमी करना और अलार्म घड़ी रखना उनके लिए सहायक हो सकता है।

नींद—नवजात शिशु को २० घंटे, छः महीने की उम्र में उसे १६ से १८ घंटे और १ वर्ष की उम्र में १४ से १६ घंटे की नींद चाहिए। छोटे बच्चों को दिन में दो बार और बड़े बच्चों को दिन में एक बार झपकी लेनी चाहिए। स्कूल में पढ़नेवाले बच्चों को दिन में खाने के बाद कम-से-कम चटाई पर कुछ देर लेटकर आराम अवश्य करना चाहिए। बच्चे को हिलाकर नहीं सुलाना चाहिए। यह बहुत खराब आदत है। उस आदत के कारण बड़ा होने पर बच्चा मां को सोने नहीं देता। बच्चे को रोज नियत समय पर सुला देना चाहिए। सुलाते समय उसे कोई उत्तेजित करनेवाली कहानी नहीं सुनानी चाहिए, और न ही कोई खेल खेलने देना चाहिए। सोते समय तनावहीन और आरामदेह वातावरण का होना बड़ा महत्वपूर्ण है। बच्चे को अकेले और आप सोने की आदत डालनी चाहिए। बच्चे को शांत रखने के लिए मुह में जो खिलौने या कपड़े की गांठ आदि डाल देते हैं, वे नुकसानदेह होते हैं—उन पर फर्श के कीटाणु लगे रह सकते हैं। बच्चा अगर रात में जागकर रोने लगे, तो इसके भी कई कारण हो सकते हैं—शायद उसे तकलीफ हो, अथवा उसने खाना अधिक खा लिया हो, या कोई मानसिक

तनाव पैदा हो गया हो। कुछ बच्चों को भयानक सपने आते हैं और वे डरकर जाग जाते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें सहलाकर, थपकी देकर और निश्चित करके फिर सुला देना चाहिए। बच्चा कभी बुरी तरह से दहशत में उठ जाता है। उसे पता नहीं रहता कि वह कहां है और वह अपने माता-पिता को भी नहीं पहचान पाता। यदि ऐसा अकसर होता है, तो डाक्टर से सलाह लेनी चाहिए।

उंगली चूसना—यदि बच्चे की चूसने की इच्छा पूर्ण रूप से तृप्त हो जाये, तो उसे उंगली चूसने की आदत नहीं पड़ेगी। इसके लिए यह जरूरी है कि जबतक वह तृप्त न हो जाये, तबतक उसे स्तन-पान करने अथवा बोतल का दूध पीने दिया जाये। उंगली चूसने की आदत बचपन में ही पड़ जाती है, और जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, यह आदत जोर पकड़ती जाती है—खासकर उस समय, जबकि वह थका हुआ हो, ऊबा हुआ हो, निराश हो, अथवा सोचना चाहता हो। जिन छोटे बच्चों में अंगूठा चूसने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है, उन्हें दूध पिलाते समय स्तन अथवा बोतल को अधिक समय तक चूसने देकर अंगूठा चूसने की आदत छुड़ाई जा सकती है। बड़े बच्चे की इस आदत को छुड़ाने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि उसका मन अंगूठा चूसने से हटाकर अन्य जगह लगाया जाये। उसकी इस आदत के कारण चिंता करने अथवा डांटने-फटकारने से काम नहीं चलेगा। किसी भी सूरत में जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है और दूसरी बातों की ओर उसका मन लगने लगता है, वैसे-वैसे यह आदत भी अपने-आप ही छूटती जाती है।

नाखून कुतरना—यह आदत भी किसी प्रकार के तनाव की निशानी है। इसे छुड़ाने का यह उपाय नहीं है कि बच्चे को डांटा या फटकारा जाये। उसका तरीका तो यह है कि तनाव के कारण को जाना जाये और उसे दूर करने का प्रयत्न किया

जाये। शायद तनाव का कारण यह हो कि स्कूल या घर में सबक याद करने में उससे जोर-जबरदस्ती की जाती है, या यह हो कि सिनेमा में अक्सर डरावने दृश्य देखने के कारण वह आतंकित हो।

हकलाना—दो-तीन साल के बच्चों में, जबकि वे लंबे वाक्य बोलने और नये विचार प्रदर्शित करने का प्रयत्न करते हैं, यह बहुत आम होता है। कभी-कभी इसका कारण यह होता है कि बांये हत्थे बच्चे पर उसकी गलती सुधारने की गलत धारणा से दायें हाथ से काम करने के लिए जोर डाला जाये। बच्चे का मानसिक तनाव भी इसका कारण हो सकता है। हकलाहट अक्सर खानदानी होती है और लड़कों में अधिक पाई जाती है। किंतु यदि ठीक ध्यान दिया जाये, तो अधिकतर बच्चे कुछ ही महीनों में यह आदत छोड़ देते हैं। किन्हीं मामलों में हकलाहट का कारण बच्चे की भावनात्मक उद्विग्नता होता है—जैसे बहन के जन्म के बाद वह यह महसूस करे कि मां अब उसकी अपेक्षा बहन को अधिक प्यार करती है और वह बहन से ईर्ष्या करने लगे, अथवा पुरानी आया की जगह नई आया के आ जाने से वह अप्रसन्न हो।

तथापि अगर बच्चा हकलाना शुरू कर दे, तो घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। इसके बारे में चिंता मत कीजिये और न ही बच्चे की हकलाहट ठीक करने की कोशिश कीजिये। इससे तो वह और ज्यादा बढ़ जायेगी। कोशिश कीजिये कि बच्चा बिलकुल आराम में और निश्चित रहे। उसके पास खेलने के लिए खिलौने है? उसे ऐसे दूसरे बच्चों के साथ, जिनसे उसकी खूब पटती है, खेलने का पूरा मौका तो मिलता है? जब वह बात करे, तो उसके तनाव के सभी कारणों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए, उसके साथ खेलना चाहिए और बातों की अपेक्षा काम करने की ओर उसका ध्यान अधिक लगाना चाहिए। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण चीज यह है

कि हकलाने पर उसे डांटना-फटकारना नहीं चाहिए और न ही उसकी इस कमी को उसे बताना चाहिए।

मुंह से सांस लेना—कुछ बच्चों को मुंह से सांस लेने की आदत पड़ जाती है। मुंह से सांस लेने का कारण एडेनाइड्स (बच्चे के गले के पीछे मांस का ढेर इकट्ठा हो जाना) भी हो सकता है। ऐसी स्थति में डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए।

मूत्रेंद्रिय से खेलना—बच्चा अपनी मूत्रेंद्रिय को सहज कुतुहलवश ही छूता है। इसके बारे में कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। ३-४ वर्ष के बच्चे में इसका संबंध उसकी भावनाओं से होता है। यौन-भावना बच्चों में काफी पहले से आ जाती है—हालांकि आम धारणा ऐसी नहीं है। बच्चे या तो मिलकर आपस में, अथवा अकेले अलग अपनी मुत्रेंद्रिय से खेलते हैं। दंड देने अथवा डराने-धमकाने से काम नहीं बनेगा। इससे तो वह और भी विगड़ जायेगा। बच्चे को दूसरे कामों में लगाना चाहिए। उसे बड़े बच्चों के साथ नहीं रहने देना चाहिए, जो उसे यह आदत डालते हैं।

६ वर्ष की उम्र के वाद उनमें इस भावना को दवाने की प्रवृति स्वाभाविक होती है। यदि ८ वर्ष का बालक हस्तमैथुन का शिकार हो जाता है, तो इसका अर्थ यह है कि घर या स्कूल की किसी वात के कारण वह वहुत चिंतित है। उसकी चिंता का कारण जानना और उसे दूर करना चाहिए। डांट-डपट से उसमें दुर्भावना पैदा होगी, जिससे आगे चलकर उसका जीवन असंतुलित हो सकता है।

चोरी करना—बहुत छोटे बच्चे में अपराध की भावना विलकुल नहीं होती। हो सकता है कि वह दूसरे बच्चे का खिलौना ले ले। लेकिन उसके लिए बच्चे को यह समझा दिया जाये कि खिलौने के विना दूसरे बच्चे को कितना बुरा लगेगा और उसे अपने खिलौने खरीद कर दे दिये जायें, तो यह काफी होगा।

छः साल की उम्र का बच्चा यह जानता है कि वह कोई गलत काम कर रहा है। वह चोरी इसलिए करता है कि वह सुखी नहीं है। इसका कारण यह हो सकता है कि बच्चे को माता-पिता से पर्याप्त स्नेह नहीं मिलता हो, या साथी-संगी के अभाव में वह अकेला महसूस करता हो। मां को यह जानकर कि उसका बच्चा चोरी करता है, हैरान या गुस्सा नहीं करना चाहिए। बच्चे को शर्मिंदा भी नहीं करना चाहिए। मां को चाहिए कि वह बच्चे की तरफ ज्यादा ध्यान दे, उसे कुछ जेब खर्च दे और इस बात की कोशिश करे कि बच्चे को साथी मिले।

यह भी हो सकता है कि दूसरे बच्चों को चुराते देखकर बच्चा चोरी करने लगे। ऐसी स्थिति में सबसे अच्छा उपाय यही है कि ऐसे बच्चों का साथ छुड़ा दिया जाये।

स्नेह और सहानुभूति के अभाव के कारण बच्चा उच्छृंखल हो जाता है और चोरी करने लगता है। ऐसी स्थिति में माता-पिता को मनोवैज्ञानिक चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए।

: ११ :

स्कूल

स्कूल किसलिए हैं—स्कूल का उद्देश्य बच्चों की वृद्धि और उनकी मानसिक शक्तियों के स्वाभाविक विकास में सहायता देना तथा उन्हें दुनिया में रहना सिखाना है। पढ़ना-लिखना और गणित आदि विषयों का शिक्षण इस लक्ष्य की सिद्धि में सहायक साधन-मात्र ही है।

आरंभ के कुछ वर्षों में हर बच्चे की निजी आवश्यकताओं का अध्ययन करना आवश्यक होता है। यही कारण है कि छोटे बच्चों के लिए घर से बढ़कर उत्तम पाठशाला कोई नहीं है, क्योंकि मां स्वाभाविकतया अपने बच्चे की सार-संभाल पूरे मनोयोग से करती है।

इस लिहाज से बालोद्यान (नर्सरी) तथा शिशुगृहों (क्रेशेज) का स्थान, जहां नौकरी पर जानेवाली माताओं के १-३ वर्ष तक के बच्चे आयाओं अथवा दूसरी निरीक्षकाओं के संरक्षण में रहते हैं, घर के बाद ही जाता है। यदि मां का नौकरी पर जाना जरूरी ही हो, तो बच्चों को अपने पड़ौसियों के घरों पर छोड़ने की अपेक्षा ऐसे शिशुगृहों में रखना ज्यादा अच्छा है। लेकिन शिशुगृहों के निरीक्षकों को भी अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए। सिर्फ यही काफी नहीं है कि बच्चे को खिला-पिला दिया जाये और वह रोता-रोता सो जाये; और न यही सच्ची देख-भाल है कि उसके पास थोड़े-से खिलौने छोड़ दिये जायें कि वह उनसे खेलता रहे। अपने घर को छोड़ने के बाद नये-नये चेहरे और शोर-

लगाव से बच्चा घबड़ा सकता है। इसलिए छः बच्चों के वर्ग पर हमेशा एक ही आया का संरक्षण रहना चाहिए, साथ ही इसका भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी बच्चे को दूसरे बच्चों से छूत न लगने पाये। खास बात यह है कि बच्चों को शिशु-गृहों में भी घर का ही वातावरण मिलना चाहिए और किसी भी कारण से यह उसे न लगना चाहिए कि वहाँ उसे घर की-सी रक्षा न मिल पायेगी। यह अत्यंत ही आवश्यक है, क्योंकि यही वह नाज़ुक उम्र है कि जब असुरक्षा की इस भावना के कारण बच्चे हकला सीखते हैं या उनकी बौद्धिक क्षमता कुंठित होती है।

खतरे का ध्यान रखना चाहिए--जुकाम-खांसीवाले बच्चों को स्कूल में जाने ही न देना चाहिए। फिर बच्चा अगर बेवक्त टट्टी-पेशाब करना चाहे, या कभी कपड़ों में ही पेशाब निकल जाये, तो उसे डांटना, लज्जित या दंडित नहीं करना चाहिए। बच्चे की वहां बाकायदा पढ़ाई नहीं होनी चाहिए--लिखने जैसी बातें जल्दी आ जाने से कोई विशेष लाभ नहीं होता। उलटे उनसे कभी-कभी बच्चे को हानि ही पहुंच सकती है। अध्यापक को हर बालक के पारिवारिक वातावरण की जानकारी होनी चाहिए। खास बात यह है कि स्कूल में बच्चा घर-जैसा ही महसूस करे। अगर कोई बच्चा ऐसा नहीं महसूस करता, तो यह उसका दोष नहीं है। ऐसे बच्चों को नर्सरी स्कूलों में जाने के लिए मजबूर भी नहीं करना चाहिए। योग्य अध्यापक यह समझते हैं कि बच्चे का मानसिक गठन बड़ों के मानसिक गठन का छोटा प्रतिरूप मात्र नहीं होता, प्रत्युत अलग और भिन्न होता है। लेकिन अगर अध्यापक अनुभवी न हों, तो वे अकसर इस बात को भूल जाते हैं और बच्चों को उनकी असावधानी पर या और बातों पर डांटने-डपटने लगते हैं। कुछ माता-पिता भी, जो यह समझते हैं कि नर्सरी स्कूल पढ़ाई-लिखाई के लिए ही हैं, अध्यापकों के इस रवैये को प्रोत्साहन देते हैं।

प्राथमिक शाला--बच्चे को प्राथमिक शाला (प्रायमरी स्कूल) में ६ से ७ साल की उम्र के लगभग भेजना चाहिए। ६ साल से कम उम्र में तो किसी भी हालत में नहीं। इस उम्र में बच्चे में स्वाभाविक जिज्ञासा होती है और इन स्कूलों का पाठ्य-क्रम भी इस प्रकार का होना चाहिए कि बच्चे को पढ़ाई के साथ-साथ अपनी जिज्ञासा तुष्ट करने का आनंद भी मिले। स्कूल में बच्चा सचित्र पुस्तकों की सहायता से पढ़ना-लिखना सीखता है, वस्तुओं की गिनती द्वारा तथा खेल-खेल में वह गणित से परिचित होता है। बच्चा इस उम्र

से शरीर के कामों तथा खेल-कूद में रुचि लेता है और अपने हाथों का उपयोग करना सीखना चाहता है । उसकी याददाश्त तेज होती है और वह चीजें याद रख सकता है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि इस कच्ची उम्र में ही उसे सभी बातें याद करने के लिए परेशान कर दिया जाये । उसके शारीरिक तथा मौखिक विकास पर नजर रखनी चाहिए और अगर उसमें कोई कमी हो, जैसे, निगाह की खराबी, सुनने या बोलने में खामी, बौनापन, आदि, तो उसके बारे में सतर्क रहना चाहिए । इन सब चीजों का अध्यापक को ध्यान रखना चाहिए, इनको माता-पिता तथा डाक्टर की जानकारी में लाना चाहिए और उसका समुचित इलाज करवाना चाहिए । कुछ मामलों, जैसे, हकलाहट, अथवा बायें हाथ से काम-काज करने की आदत आदि, में बच्चों को छेड़ना नहीं चाहिए । बहुत अधिक शर्मीलापन अथवा उद्दंडता पर निगाह रखनी चाहिए तथा बच्चे का इस तरह मार्ग-दर्शन करना चाहिए कि वह इनसे छुटकारा पा सके । शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर में बच्चे की शारीरिक देखभाल, सामूहिक खेल-कूद तथा काम—इन सबको शामिल करना चाहिए । यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक शालाओं के अध्यापक बाल मनोविज्ञान में पूर्ण रूप से दक्ष हों, क्योंकि [illegible] तरीकों से इस नाजुक उम्र में जो हानि होती है, [illegible] पढ़ाई के गलत तरीकों से हुई हानि से कहीं [illegible] ।

वात रोग—जिनके लक्षण चाहे मामूली ही क्यों न हों, किंतु बाद में जिनके गंभीर परिणाम हो सकते हैं—आंखों की कमजोरी (जैसे, दूर अथवा पास की चीज ठीक से न दिखाई देना), गले की खराबियां—बढ़े तथा सूजे हुए टान्सिल,—खुजली, अथवा दूसरे चर्मरोग, जैसे, प्रारंभिक अवस्था का कोढ़, आदि ऐसी बीमारियां हैं, जो डाक्टरी परीक्षण के समय ही पकड़ में आ सकती हैं और आमतौर पर साधारण आदमियों की निगाह में नहीं आ सकती हैं। जांच करनेवाला डाक्टर माता-पिता तथा स्कूल के अधिकारियों को इलाज के बारे में सूचित करेगा और यह भी बतायेगा कि यह रोग संक्रामक है अथवा नहीं। जब भी आवश्यक हो, वह माता-पिता को बच्चे के खान-पान में सुधार के बारे में भी सूचित करता रहेगा। यह सूचना उतनी ही उपयोगी है, जितनी कि बीमारी तथा उसके इलाज से संबंधित सूचना। माता, मोतीझरा, डिपथिरिया, क्षय, आदि संक्रामक रोगों के निरोधक टीकों के बारे में राय देना भी स्कूल में होनेवाली नियमित डाक्टरी जांच के अंतर्गत ही आता है।

यह आवश्यक है कि माता-पिता स्कूल के डाक्टर को इस संबंध में सहयोग दें और ऐसे परीक्षणों का पूरा फायदा उठायें। स्कूलों में होनेवाली ये डाक्टरी जांचें बच्चों की बीमारियों के इलाज तथा निरोध एवं स्कूल की सफाई तथा स्वास्थ्य सुरक्षा की अवस्थाओं को सुधारने के लिए बहुत उपयोगी हैं। डाक्टर यहां पर दुहरा काम करता है—स्वास्थ्य शिक्षक का और चिकित्सक का।

●

आयु	भार	ऊंचाई
२ साल	२५ पौंड	३२ इंच से ३४ इंच
३ साल	३० पौंड	३६ इंच
५ साल	४० पौंड	४० इंच

: ३ :

शिशु-पोषण में प्रयुक्त खाद्यों की संरचना

खाद्य	कार्बोहाइड्रेट प्रतिशत	प्रोटीन प्रतिशत	वसा प्रतिशत	केलरी प्रति इकाई
मां का दूध	७.५	१.०	४.०	२०
गाय का दूध	५.०	३.५	४.०	२०
भैंस का दूध	५.०	४.२	८.८	२९
मक्खन निकला दूध	५.०	३.५	...	१०
बकरी का दूध	४.७	३.७	५.६	२०

शक्कर — १२० कलरी प्रति औंस

तपिओका — शुद्ध स्टार्च है

चावल — मुख्यत: स्टार्च और ७ से ८ प्रतिशत प्रोटीन

गेहूं — मुख्यत: स्टार्च और ११ से १२ प्रतिशत प्रोटीन

प्रोटीन-प्रचुर खाद्य (मांसपेशियां बनानेवाले) :

पनीर, अंडा, दूध, गोश्त, मछली, दालें, चना, मूंगफली, सोयाबीन, सेम की फलियां, बादाम, तिल।

: ४ :

पाक-विधियां

अंडे की सफेदी का पानी—प्याले में ताजे अंडे की सफेदी कांटे से अच्छी तरह फेंटकर उसमें कोई २ औंस उबालकर ठंडा किया हुआ पानी डालकर मिलाइये। स्वाद के अनुसार शक्कर भी मिलाई जा सकती है।

बार्ली (जौ) का पानी—चाय का चम्मच भरकर जौ का आटा लेकर उसमें थोड़ा पानी मिलाइये। अच्छी तरह मिलाने के बाद उसमें इतना पानी डालिये कि १ पिंट (२० औंस) हो जाये। अब इसे आग पर चढ़ा दीजिये। लगातार चलाते रहिये। पांच मिनट तक उबलने दीजिये। जौ का पानी तैयार है।

जौ का पानी अधिक पौष्टिक तो नहीं होता, लेकिन एक पेय के रूप में, और खासकर दूध तथा दही को पतला और हलका बनाने के लिए यह बहुत उपयोगी है। इसी कारण कई डाक्टर दूध में सादे पानी की जगह जौ का पानी मिलाने की राय देते हैं। जौ के आटे के बजाय छिलकेदार जौ को उबालकर और पानी को निथारकर भी जौ का पानी बनाया जा सकता है।

अरारोट की राब—दो चाय के चम्मच-भर अरारोट का आटा लेकर उसकी ठंडे पानी में लेई-सी बना लीजिये। अब इसमें कोई एक प्याला-भर उबलता पानी मिलाकर इसे इतनी देर तक उबालिये कि मिश्रण एकसा और हलके नीले रंग का हो जाये। पानी इतना मिलाना चाहिए कि उबालने के बाद राब न तो बहुत पतली ही हो और न बहुत गाढ़ी। राब में दूध या मठा मिलाकर दीजिये। स्वाद के लिए आवश्यकतानुसार चीनी भी मिला दीजिये। यह राब आमतौर पर उन बच्चों को दी जाती है, जिन्हें दस्त लगे होते हैं। लेकिन इसे ज्यादा दिनों तक एक मात्र आहार की तरह नहीं देना चाहिए, क्योंकि इसमें प्रोटीन बिलकुल नहीं होता।

कर रख लीजिये। राब बनाने के लिए एक प्याला पानी में एक चम्मच चूरा मिलाकर आग पर रख दीजिये और उबाल आ जाने के बाद ३ मिनट तक और आग पर रहने दीजिये। चीनी और दूध मिलाकर गरम-गरम परोसिये।

गेहूं तथा रागी की लपसी—पानी में रागी तथा गेहूं कोई १२ घंटे भीगने दीजिये। दोनों की अलग-अलग बारीक पिट्ठी पीसकर और पानी में घोलकर कपड़े में छान लीजिये। छनकर निकली पिट्ठी को थोड़ी देर बिना हिलाये रख दीजिये। फिर ऊपर का पानी निथारकर पिट्ठी को कपड़े पर फैलाकर (रागी तथा गेहूं अलग-अलग) सुखा लीजिये और गेहूं तथा रागी को १ : १ या २ : १ के अनुपात में मिलाकर बोतलों या डिब्बों में भरकर रख दीजिये। खाने के लिए इसकी लपसी या राब बनाकर लीजिये। स्वाद के अनुसार मठा या दूध और खांड मिलाइये।

केले का चूरा—इसके लिए कच्चा मलबारी केला लीजिये। छील-कर केले की पतली-पतली चकतियां काट लीजिये। सुखाकर पीस लीजिये और डिब्बों में भरकर रख लीजिये। खिलाने के लिए इसे पानी में घोलकर बच्चे को दिये जानेवाले दूध में मिलाकर दीजिये।

चने के लड्डू—भुने हुए चने ४ चाय के चम्मच, मक्खनरहित दूध का पाउडर १ चाय का चम्मच, पानी ५ औंस, खांड स्वाद के अनुसार। पहले खांड थोडे-से पानी में घोल लीजिये और उसे उबाल-कर छान लीजिये। फिर उसमें दूध-पाउडर तथा बाकी बचा पानी मिला दीजिये और भुने हुए चने डालकर (ज्यादा छोटे बच्चों को देना हो, तो चने को पीस लेना चाहिए) कुछ देर मंदी आंच पर चलाते रहिये। उसके बाद उतारकर ठंडा कर लीजिये—खिलाने के लिए ऐसे ही दे दीजिये, या साफ हाथों से लड्डू बनाकर दीजिये।

चावल की राब—सेला चावल को बादामी रंग का सेककर उसे मोटा पीस लेते हैं। मंदी आंच पर एक घंटे तक पकाकर इसकी गाढ़ी राब-सी बना लेते हैं और फिर दूध तथा शक्कर या मठे के साथ खा सकते हैं।

: ५ :

स्कूल में दोपहर के भोजन के लिए सस्ती पाक-विधियां

मिस्सी रोटी—४ औंस गेहूं के आटे तथा ३ औंस चने के आटे को ८ औंस मेथी के पत्ते के साथ गूंथिये। उसमें प्याज, मिर्च और नमक भी मिलाइये। चपाती बनाकर तेल के साथ तवे पर सेक लीजिये।

गेहूं का दलिया—कढ़ाई में ३ औंस दले हुए गेहूं लेकर भून लीजिये। उसमें १ औंस मूंग की दाल तथा २४ औंस पानी और खांड मिलाकर पका लीजिये। गरम दूध या मठे के साथ खाने को दीजिये।

गेहूं तथा दाल के लड्डू—१-१ औंस भुने गेहूं के आटे तथा भुने चने को मिलाकर उसे आधा औंस खांड, दूध या पानी के साथ मिलाकर लड्डू बना लिये जाते हैं।

पनियारम—२ औंस चावल और १ औंस उर्द की दाल को अलग-अलग रात भर भिगोकर सवेरे पीसकर अलग-अलग ५ घंटे के लिए खमीर पैदा होने के लिए रख देते हैं। फिर दोनों को मिलाकर छोटी-छोटी लोई बना लेते हैं और तल लेते हैं।

रसेदार बड़ियां—बड़ियां बनाने के लिए उर्द या मूंग की दाल रात भर पानी में भिगोकर पीस लेते हैं, और फिर उसमें खमीर पैदा करने के लिए उसे १२ घंटे तक रखा रहने देते हैं। इसके बाद उसकी छोटी-छोटी बड़ियां बनाकर धूप में सुखा लेते हैं। १ औंस बड़ियों को तेल में तलकर तले हुए आलू तथा जीरा मिलाकर रसेदार पका लेते हैं। स्वाद के लिए हल्दी, नमक तथा गरम मसाला भी डालते हैं।

ढोकला—बेसन को मठे में भिगोकर २४ घंटे तक खमीर उठने के लिए रख देते हैं। फिर इसमें नमक, हल्दी, कटी हरी मिर्च तथा अदरक मिलाकर भाप में पकाकर जमा लेते हैं। इसके बाद इस पर राई और हींग का तेल में छौंक देकर और धनिये की पत्ती डालकर काटकर परोस देते हैं।

आयु	परिरक्षण की प्रस्तावित प्रक्रिया
३–४ महीने	उपरोक्त में प्रत्येक की दूसरी खुराक ।
५–६ महीने	डिपथीरिया, कुक्कुर खांसी तथा टिटेनस-निरोधक टीके की तीसरी खुराक । चेचक का टीका ।
१२ महीने	पोलियो-निरोधक टीके की तीसरी खुराक ।
१८ महीने	डिपथीरिया, कुक्कुर खांसी तथा टिटेनस-के संयुक्त टीके की अतिरिक्त खुराक ।
५ साल	डिपथीरिया तथा टिटेनस की संयुक्त अतिरिक्त खुराक । चेचक का टीका । जब भी छूत का खतरा हो, टायफायड तथा हैजे के टीके ।

: ७ :

वालकों के पालन की परंपरागत विधियों की अच्छाइयां-बुराइयां

प्रचलित रिवाज	*अच्छाइयां-बुराइयां*
एक वर्ष की आयु के भी बाद तक स्तन-पान जारी रखना ।	माताओं पर कुछ अतिरिक्त भार, पर यदि साथ में उचित पूरक खाद्य दिये जाते रहें, तो बच्चे को कोई हानि नहीं होती ।
बच्चे को जबतक वह चाहे स्तन से (या बोतल से) दूध पीते रहने देना ।	कुछ लाभ हैं (भारत में इसके कारण बच्चों का अंगूठा चूसना कम है) । लेकिन इससे नुकसान भी होते हैं ।

प्रचलित रिवाज	अच्छाइयां-बुराइयां
मालिश करना ।	गरम जलवायु में उपयोगी है ।
नियमपूर्वक अंडी का तेल देना ।	बुरा है और इसे बंद कर देना चाहिए, क्योंकि यह आंतों को उत्तेजित करता है । नित्य या बार-बार जुलाब देना हज्म हुई वस्तुओं का शरीर में जाना कम कर देता है ।
बच्चों को शांत रखने के लिए अफीम देना ।	बहुत बुरा है ।
बच्चा चलने लगे, तब भी उसे गोद में घुमाना ।	अच्छा नहीं है, क्योंकि इससे बच्चे को कसरत का कम मौका मिलता है और यह बच्चे को शारीरिक तथा मानसिक रूप से अत्यधिक निर्भर बनना सिखाता है ।

०